VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/ 57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2018 TO 31.12.2020)

६७, ८ नवम्बर २०१८

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :
स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादकः
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल
(सञ्चालक)

सह–सम्पादक :
डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. नरेश कुमार	क्रांतिकारी सुभाष चन्द्र बोस	कविता	२
डॉ. राजेन्द्र कुमार	यम-नचिकेता कथानक में प्रतिबिम्बित जीवन-दर्शन	लेख	३
डॉ. राजेश सिंह	संस्कृत-साहित्य में गीति, मुक्तक तथा शतक काव्यों का अन्त: सम्बन्ध एवं वैशिष्ट्य	लेख	९
डॉ. रमण कुमार	ईश्वर दर्शन	लेख	१५
डॉ. रामप्रकाश आर्य	विष्णु के तीन कदम	लेख	१७
प्रो. अमनप्रीत कौर	गीतांजलि के आधार पर रवींद्रनाथ टैगोर का जीवन-दर्शन	लेख	१९
श्री बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'	रात-दिन	कविता	२२
वैद्य गजानन्द व्यास	आज के परिवेश में मनु की सार्थकता	लेख	२३
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	भारतीय दर्शन के विकास में बिहार के प्राचीन ऋषियों, महर्षियों एवं दार्शनिकों का योगदान	लेख	२६
श्री महेन्द्र सिंह शेखावत 'उत्साही'	(बाल कविता) जल की कीमत	कविता	२९
डॉ. शैलजा	जैसा कर्म वैसा फल	लेख	३०
डॉ. गीता शर्मा	हिन्दी काव्य में सहजोबाई का योगदान	लेख	३३
एडवो० दयानन्द स्वरूप	शोध (रिसर्च) फिटकरी पर (संपूर्ण एण्टीवायोटिक्स)	लेख	३५
डॉ. अनुभा जैन	वैदिक वाङ्मय में शुभाशुभ कर्मप्रर्वत्तक-मन का स्वरूप	लेख	३६
श्री किशोर रॉय	महाकवि कालिदास कृत विक्रमोर्वशीय में अर्थप्रकृति-विवेचन	लेख	३९
श्री अजय शर्मा	वाल्मीकीय रामायण में श्री राम के राजनीतिक उपदेशों की वर्तमान में प्रासङ्गिकता	लेख	४२
	संस्थान-समाचार		४५
	विविध-समाचार		४६
	पुण्य-पृष्ठ		४७-४८

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६७ होश्यारपुर, कार्तिक २०७५; नवम्बर २०१८ संख्या ८

मा नो वधाय हत्नवे,
जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे।।

(ऋ. १.२५.२)

इसलिए हे भगवन्! (मा नो वधाय हत्नवे) हमारा कचूमर मत निकाल। (जिहीळानस्य रीरधः) हमारी इतनी बुरी मार-पीट मत कर। (मा हृणानस्य मन्यवे) हम पर रुष्ट होकर अतिक्रोध मत कर।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं,
ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
तेनेशितं कर्म निवर्तते ह,
पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् - ६.२)

जिस परमेश्वर से यह संपूर्ण संसार सदा व्याप्त है। यह ज्ञानस्वरूप परमात्मा काल का भी महाकाल है। जो सर्वगुण संपन्न, सब कुछ जानने वाला है, उस परमेश्वर से ही यह संसाररूप कर्म शासित है और ठीक प्रकार से चल रहा है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश भी उसी से शासित हैं। अतः सदा ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए।

क्रांतिकारी सुभाष चन्द्र बोस

–डॉ. नरेश कुमार

नमन करते हम भारतरत्न को
जिसने स्वतंत्रता का इतिहास
स्याही से नहीं, खून से लिखा
भाषण से नहीं, बलिदान से लिखा
नमन करते हम स्वाभिमानी को
जिसने इतिहास का स्वार्णिम पन्ना
याचना से नहीं, संघर्ष से लिखा
बातों से नहीं, पौरुष से लिखा
नमन करते हम अपराजेय शौर्य को
जिसने शांति के बजाए क्रांति को
अहिंसा के बजाए प्रतिकार को
जिसने निष्क्रियता के बजाए मौत को
अपने गले का हार बनाया।
नमन करते उस क्रांतिदूत को
जिसने चिन्गारी को शोले में बदल दिया
ललनाओं को रणचंडी बना दिया
जिसने धन, पद सब त्यागा था
आजादी हित सब गँवाया था
नमन करते उस बलिदानी को
जो युग चेता, सच्चा नेता था
नमन करते उस फरिश्ते को
मोम-सा पिघलाया शासन फौलादी
नमन करते उस सेनानी को
जिसके बलिदानों से आई आजादी
नमन करते उस सेनानायक को
बनी रहेगी युग-युगों तक अमर कहानी
शत-शत नमस्कार नेताजी को
युग-युग तक रहेगी महिमा बलिदानी।

-जे-२३५, पटेल नगर, गाजियाबाद-२०१००१

यम-नचिकेता कथानक में प्रतिबिम्बित जीवन-दर्शन

-डॉ. राजेन्द्र कुमार

यम-नचिकेता कथानक कठोपनिषद् में आता है। उपनिषद् भारतीय आर्षप्रज्ञा के महान् चमत्कार हैं। वेदों के पश्चात् प्रामाणिक माने जाने वाले ग्रन्थों में वे शीर्षस्थ हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा उपनिषदों को श्रुति के अन्तर्गत मानती है। श्रुति के विषय में यह धारणा आदिकाल से चली आ रही है कि वह ऋषियों द्वारा अनुभूत उपलब्धियों की निधि है। वैदिक ऋषियों ने अपनी प्रतिभा-चक्षुओं द्वारा सत्य को जिस रूप में देखा उसका अपने शब्दों में वर्णन किया। इसलिए प्राचीन परम्परा इन्हें मन्त्रस्रष्टा न कहकर मन्त्रद्रष्टा के नाम से पुकारती है। ऋषियों द्वारा सत्य-दर्शन तथा उनसे होने वाली उपलब्धियाँ अत्यन्त गहन और व्यापक थीं इसलिए साधारण जन द्वारा बोधगम्य भाषा में इनको अभिव्यक्त करना अधिक सम्भव न था। इसी कारण वैदिक ऋषियों को प्रतीकों का आश्रय लेना पड़ा। उपनिषदों में दुरूह विषय को बोझिल होने से बचाने के लिए तथा विषय की रोचकता को बनाये रखने के लिए संवाद-शैली का अवलम्बन लिया गया है। उपनिषदों के अनेक संवाद (कथानक) हैं जिनके माध्यम से संसार की वास्तविकता को दिखाया गया है तथा एक आदर्श जीवन-दर्शन की शिक्षा दी गई है। उपनिषदों में कथानकों के माध्यम से जो वास्तविकता दिखाई गई है उसको जानने के लिए औपनिषदिक कथानकों का अध्ययन करना अनिवार्य है।

कथानक- यम-नचिकेता कथानक का वर्णन कठोपनिषद् में आता है जिसके अनुसार जिस समय भारतवर्ष का पवित्र आकाश यज्ञ-धूम और उसके पवित्र सौरभ से परिपूर्ण था, उसी समय ऋषि वाजश्रवा के पौत्र उद्दालक ऋषि विश्वजित् यज्ञ का सम्पादन करते हैं तथा अपना सर्वस्व दान कर देते हैं। उस यज्ञ में ऋषि उद्दालक ने अपनी जीर्ण-शीर्ण गायों को भी दान कर दिया; परन्तु दक्षिणा में ले जाई जाती हुईं वृद्ध निर्बल गायों को देखकर उनके पुत्र नचिकेता का हृदय इस प्रकार के अनुपयोगी दान से अनिष्टकारी परिणाम से पिता की रक्षा करने के लिए उद्यत हो जाता है। वह अपने पिता से बार-बार पूछता है, आप मुझे किसे दान में देंगे? क्रोधवश उद्दालक कहते हैं- मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।[1] पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर पुत्र नचिकेता यमालय पहुँचते हैं। यमराज के वहां न होने पर नचिकेता तीन दिन तथा तीन रात्रि तक अन्न-जल ग्रहण किये बिना प्रतीक्षा करते हैं। यम वापिस लौट कर नचिकेता के इस दृढ़ स्वभाव की प्रशंसा करते हैं और नचिकेता का पूर्णरूप से अतिथिसत्कार करके उसे तीन वर माँगने को कहते हैं। प्रथव वर में नचिकेता अपने पिता के कल्याण की इच्छा करता है-

१. कठोपनिषद १.१.४

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।।[2]

द्वितीय वर के रूप में वह यमाचार्य से अग्नि-विद्या को ग्रहण करता है। तृतीय वर के रूप में जब वह आत्मतत्व सम्बन्धी गूढ़ रहस्य को जानने की इच्छा प्रदर्शित करता है, तब सर्वप्रथम तो यमदेव उसे अनेक भौतिक सुखरूपी प्रलोभन देते हैं परन्तु नचिकेता की दृढ़ता को देखकर उसे ब्रह्म-विद्या का अधिकारी जानकर उसका महत्व प्रकट करते हैं[3] तथा उसे विभिन्न दृष्टान्तों के माध्यम से संसार की वास्तविकता को बतलाते हैं।

कथानक का उद्देश्य- प्रस्तुत कथानक का मुख्य उद्देश्य यमराज के द्वारा नचिकेता को दी गई शिक्षा को यम-नचिकेता कथानक के माध्यम से सामान्य जनों तक पहुँचाना है। इस कथानक की अनेक शिक्षायें हैं-

१. श्रेय और प्रेय मार्ग का प्रतिपादन- यम-नचिकेता कथानक का प्रथम उद्देश्य श्रेय और प्रेय मार्ग की शिक्षा देना है। सर्वप्रथम यमाचार्य श्रेय एवं प्रेय का साक्षात्कार कराते हुए तथा उनमें किसका चयन करना चाहिये, इसका वर्णन करते हुए नचिकेता को समझाते हैं-

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ
सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।[4]

अर्थात् इस संसार में श्रेयमार्ग और प्रेयमार्ग दोनों ही मनुष्य के समक्ष आते हैं। जो मनुष्य विवेकशील होता है, वह दोनों के गुण-दोषों पर विचार करके दोनों में निहित तत्वों को पूर्णतया समझकर नीर-क्षीर विवेकी हंस की तरह प्रेय की अपेक्षा श्रेय मार्ग को अपनाता है। परन्तु जो मनुष्य निर्बुद्धि हैं, वे भोगों में आसक्त होकर अपने देव-दुर्लभ मनुष्यजीवन को पशुवत् भोगों को भोगने में समाप्त कर देते हैं। विवेकशक्ति के अभाव के कारण वह श्रेय के फल में अविश्वास करके प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले लौकिक योगक्षेम की सिद्धि के लिए प्रेयमार्ग को अपनाता है। वह इतना ही समझता है जो कुछ भोगपदार्थ प्राप्त हैं, वे सुरक्षित बने रहें और जो अप्राप्त हैं वे प्रचुर मात्रा में मिल जायें। इस प्रकार का वर्णन करके मृत्युदेव श्रेय प्राप्ति पर ही विशेष बल देते हैं तथा प्रेयमार्ग से विरक्त होने का उपदेश देते हैं।

श्रेय और प्रेय के आधारभूत साधन- यहाँ श्रेय और प्रेय के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्रेयमार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। श्रेयमार्ग, जिस पर गमन कर मनुष्य परमात्मा को प्राप्त करता है, उस परमात्मा के परमधाम में किन साधनों से सम्पन्न मनुष्य पहुँच सकता है यह बात कठोपनिषद् में रथ और रथी के रूप में कल्पना करके यमदेव ने बतायी है। यमराज कहते हैं कि-जिस मनुष्य का बुद्धिरूप सारथि, मनरूपी लगाम द्वारा इन्द्रिय रूपी घोड़ों को आपात् रमणीय संसार की ओर भटकने से रोक लेता है, वही अन्ततः श्रेय

२. कठोपनिषद् १.१.१० ३.वही, १.१.२७ ४.वही, १.२.२

मार्ग का अनुसरण करते हुए परमात्मा के परमधाम को प्राप्त होता है।[5]

इसके विपरीत प्रेयमार्गी विवेकहीन और संयमहीन होते हैं। उनका बुद्धिरूप सारथि मनरूपी लगाम द्वारा इन्द्रिय रूपी घोड़ों पर नियन्त्रण नहीं रखता है। फलतः इन्द्रिय रूपी दुर्धर्ष घोड़े संसाररूपी हरी-भरी घास की तरफ मनमाना दौड़ते हैं। इस प्रकार वह प्रेयमार्गी सदैव जन्म-मरण चक्र में भटकता रहता है।[6]

श्रेय और प्रेय से वांछनीय फल- यम नचिकेता को ब्रह्मविद्या का उत्तम अधिकारी जानकर ही श्रेय और प्रेय के वांछनीय फल पर विचार करते हैं। श्रेय प्राप्ति और प्रेय विरक्ति तथा उनके साधनों का वर्णन कर यमदेव कहते हैं कि मनुष्य शरीर अन्यान्य योनियों की भाँति केवल कर्मो का फल भोगने के लिए नहीं मिला है इसमें मनुष्य भविष्य में सुख देने वाले साधन का अनुष्ठान भी कर सकता है।[7] इस प्रकार कठोपनिषद् में सुख के दो साधन बताये गये हैं-

श्रेय मार्ग- अर्थात् संसार के दुःखों से छूटकर परब्रह्म की प्राप्ति का उपाय।

प्रेय मार्ग- अर्थात् इहलोक तथा स्वर्गलोक की जितनी प्राकृत सुखभोग सामग्रियाँ हैं, उनकी प्राप्ति का उपाय।

श्रेय मार्ग का फल- यमराज नचिकेता को बताते हैं कि सुख के ये दोनों साधन ही मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। अधिकांश लोग तो 'भोगों में प्रत्यक्ष व शीघ्र सुख प्राप्ति है', यह सोचकर प्रेय मार्ग की ओर आकृष्ट होते हैं परन्तु भाग्यवान् पुरुष प्रभु की कृपा से इन प्राकृत भोगों की क्षणभंगुरता का रहस्य जानकर उनकी ओर सें विरत हो जाता है और श्रेय के श्रेष्ठ साधन में संलग्न होकर उसकी साधना करता है। उसका सर्वविध कल्याण हो जाता है। वह सदा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है। इस प्रकार उसको सांसारिक दुःखों से रहित होकर असीम आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है जो कि प्रेयमार्गी के लिए कदापि सम्भव नहीं है। अतः कठोपनिषद् में कहा गया है- श्रेय मार्ग का अनुसरण करने वाले मनुष्य का ही कल्याण होता है।[8]

प्रेय से प्राप्त फल- जो अल्पबुद्धि मनुष्य प्रेयमार्ग को उत्तम समझता है वह मानव-जीवन के परम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्तिरूप यथार्थ प्रयोजन को सिद्ध नहीं कर पाता। अतः उसे नित्य सुख की भी प्राप्ति नहीं होती। उसे तो भ्रमवश सुख प्रतीत होने वाले अनित्य सुख ही हाथ लगते हैं, जो वास्तव में दुःख के सागर हैं। अज्ञानवश मिथ्याभिमान में वह मनुष्य अपने अभीष्ट स्थान पर नहीं पहुँच पाता और बीच में ठोकरें खाता रहता है। इस प्रकार भोगों के उपसर्जन में रत रहकर वह मनुष्य-जीवन का अमूल्य समय नष्ट कर देता है। वह यथार्थ लाभ से ही विहीन हो जाता है।

---

५. कठोपनिषद् १.३.६

६. वही, १.३.५

७. वही, १.२.१

८. वही, १.२.१

इस प्रकार श्रेय तथा प्रेय के स्वरूप, साधन तथा फल की पूर्णरूप से व्याख्या करते हैं। वे नचिकेता की इसी सन्दर्भ में प्रशंसा करते हैं कि इस अल्पावस्था में भी उसने सभी भौतिक सुखों को त्याग दिया और एकमात्र परमात्मा की प्राप्ति के लिए अडिग रहा। हम यहां यम नचिकेता का उदाहरण देकर 'श्रेयमार्ग' की नितान्त प्रशंसा करते हैं-

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।।[९]

उनका कहना है कि कर्मों के फलस्वरूप भोगसमूह की जो निधि प्राप्त होती है, वह कितनी ही महान् क्यों न हो उसका नाश अवश्य है, अतएव वे अनित्य हैं-

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नचिकेतश्चितोऽग्नि-
रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।।[१०]

यमराज नचिकेता को कहते हैं कि हे नचिकेता! मैं इस बात को भलीभाँति जानता हूँ कि कर्मों के फलस्वरूप इस लोक और परलोक के भोगसमूह अनित्य हैं, एक दिन उनका विनाश निश्चित है। अतः अनित्य साधनों से नित्य पदार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस रहस्य को जानकर ही मैंने नाचिकेत अग्नि के चयनादि रूप से जो कुछ यज्ञादि कर्तव्य-कर्म अनित्य वस्तुओं के द्वारा किये सब के सब कामना और आसक्ति से रहित होकर केवल कर्तव्य-बुद्धि से किये। इस निष्काम भाव की यह महिमा है कि अनित्य पदार्थों के द्वारा कर्तव्य-पालन रूप ईश्वर-पूजा करके मैंने नित्य-सुख रूप परमात्मा को प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार श्रेय और प्रेय की विवेचना करके यमदेव प्रेय की विरक्ति तथा श्रेय की ही श्रेष्ठता की स्थापना करते हैं तथा साथ ही वे निष्काम भाव से प्रेय के अनुकरण का भी निर्देश देते हैं।

२. ब्रह्मविषयक ज्ञान का उपदेश- इस कथानक का दूसरा उद्देश्य ब्रह्मविषयक ज्ञान का उपदेश देना है। नचिकेता द्वारा ब्रह्मविषयक प्रश्न पूछे जाने पर यमराज नचिकेता को वास्तविक ज्ञान का अधिकारी जान कर ब्रह्मतत्व का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे नचिकेता- समस्त वेद नाना प्रकार और नाना छन्दों से जिसका प्रतिपादन करते हैं, सम्पूर्ण तप आदि साधनों का जो एकमात्र परम और चरम लक्ष्य है तथा जिसको प्राप्त करने की इच्छा से साधक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान किया करते हैं, उस पुरुषोत्तम भगवान् का परम तत्व मैं तुम्हें संक्षेप में बतलाता हूँ 'वह ओम् है।"[११] तात्पर्य है कि नाम रहित होने पर भी परमात्मा के अनेक नाम हैं। उनके सब नामों में 'ओम्' सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अतः यहां 'नाम' और नामी का अभेद मानकर 'प्रणव' को परब्रह्म पुरुषोत्तम के स्थान में वर्णन करते हुए यमराज कहते हैं कि यह अविनाशी प्रणव-ओंकार ही तो ब्रह्म

९. कठोपनिषद्, १.२.११ १०. वही, १.२.१० ११. वही, १.३.१५

(परमात्मा का) स्वरूप है और यही परब्रह्म परमपुरुष पुरुषोत्तम है अर्थात् उस ब्रह्म और परब्रह्म दोनों का ही नाम ओंकार है। अत: इस तत्व को समझकर साधक इसके द्वारा दोनों में से किसी भी अभीष्ट रूप को प्राप्त कर सकता है।[१२] यह ओंकार ही परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए सब प्रकार के आलम्बनों में से सबसे श्रेष्ठ आलम्बन है और यही चरम आलम्बन है। अर्थात् परमात्मा के श्रेष्ठ नाम की शरण हो जाना ही उसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम एवं अमोघ साधन है। इस रहस्य को समझकर जो साधक श्रद्धा और प्रेमपूर्वक इस पर निर्भर करता है, वह नि:सन्देह परमात्मा की प्राप्ति का गौरव प्राप्त करता है।[१३]

पर ब्रह्म परमात्मा अचिन्त्य शक्ति हैं और विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं। एक ही समय में उनमें विरुद्ध धर्मों की लीला होती है। वे परमेश्वर अपने नित्य परमधाम में विराजमान रहते हुए ही भक्ताधीनतावश उनकी पुकार सुनते ही दूर से दूर चले जाते हैं अर्थात् वे परमात्मा सदा सर्वदा सर्वत्र स्थित हैं। उनकी सर्वव्यापकता ऐसी है कि बैठे भी वही हैं, दूर देश में चलते भी वही हैं, सोते भी वही हैं और सब ओर आते-जाते भी वही हैं। वे सर्वत्र सब रूपों में नित्य अपनी महिमा में स्थित हैं। इस प्रकार अलौकिक परमैश्वर्यस्वरूप होने पर भी उन्हें अपने ऐश्वर्य का तनिक भी अभिमान नहीं है। उस परमदेव को जानने का अधिकारी उनका कृपापात्र मेरे (आत्मतत्त्वज्ञ [illegible] के सदृश अधिकारियों के) सिवा दूसरा कौन हो सकता है।[१४]

यमराज नचिकेता को बतलाते हैं कि प्राणियों के शरीर अनित्य और विनाशशील हैं, इनमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। इन सब में समभाव से स्थित परब्रह्म पुरुषोत्तम इन शरीरों में सर्वथा रहित, अशरीरी है। इसी कारण वे नित्य और अचल हैं। प्राकृत देश-काल गुणादि से अपरिछिन्न उस महान्, सर्वव्यापी, सबके आत्मरूप परमेश्वर को जान लेने के बाद वह ज्ञानी महापुरुष कभी किसी से भी किसी कारण से किसी अंशमात्र भी शोक नहीं करता है।[१५]

३. आत्मा के वास्तविक स्वरूप का उपदेश- यम-नचिकेता कथानक का तीसरा उद्देश्य 'आत्मा' के विषय में जानकारी देना है। जब नचिकेता यमराज से 'आत्मा' के विषय में प्रश्न पूछता तब यमराज नचिकेता को आत्मा के विषय में उपदेश देते हैं कि हे नचिकेता! यह नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा न तो जन्मता है और न ही मरता है, यह न तो स्वयं किसी से हुआ है और न ही इससे कोई भी हुआ है अर्थात् यह न तो किसी का कार्य है और न ही किसी कारण है। यह अजन्मा और नित्य सदा एकरस रहने वाला और पुरातन है। वस्तुत: आत्मा न तो किसी को मारता है और न ही कोई इसे मार सकता है।[१६]

---

१२. कठोपनिषद् १.३.१६
१३. वही, १.३.१७
१४. वही, १.२.२१
१५. वही, १.२.२२
१६. वही, १.२.१८

यमराज यहां आत्मा के शुद्ध स्वरूप का और उसकी नित्यता का निरूपण करते हुए कहते हैं कि जो लोग इसको मारने वाला या मरने वाला मानते हैं, वे वस्तुत: आत्मा के स्वरूप को जानते ही नहीं, वे सर्वथा भ्रान्त हैं। उनकी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। वस्तुत: आत्मा न तो किसी को मारता है और न इसे कोई मार सकता है। साधक को शरीर और भोगों की अनित्यता और अपनी आत्मा की नित्यता पर विचार करके, इन अनित्य भोगों से सुख की आशा का त्याग करके सदा अपने साथ रहने वाले नित्य सुख-स्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को प्राप्त करने का अभिलाषी बनना चाहिये।[१७]

सम्पूर्ण सम्वाद को साररूप में देखा जाय तो यही लिखा जा सकता है कि यमराज नचिकेता को समझाते हैं कि जीवात्मा निष्काम भाव से किए गये कर्मों के द्वारा जन्म-मरण के चक्कर से छूट जाता है। इस प्रकार 'यम-नचिकेता' कथानक के अनुसार हमें ज्ञात होता है कि हमें 'श्रेय मार्ग' का अनुसरण करना चाहिए। तभी हम आत्मा-विषयक एवं ब्रह्म विषयक ज्ञान को प्राप्त करते हुए सांसारिक बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। इसके साथ ही हमें इस कथानक से यह भी शिक्षा मिलती है कि- **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्**- अर्थात् श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान को प्राप्त कर सकता है क्योंकि यमराज ने नचिकेता को उपरोक्त उपदेश देने से पहले अनेक प्रलोभन दिये। परन्तु यमराज नचिकेता को अपने विषय पर अडिग देखकर एवं उसे वास्तविक ज्ञान का अधिकारी देखकर उपदेश देते हैं। इससे ज्ञात होता है कि किसी भी ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमारे अन्दर श्रद्धा का होना अनिवार्य है। यही यम-नचिकेता कथानक का उपदेश है। इसी में ही जीवन की सार्थकता है।

-सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, बींटन, तह. हरोली, जिला ऊना (हि.प्र.)

१७. कठोपनिषद् १.२.१८

अर्थेप्सुता परं दुःखमर्थप्राप्तौ ततोऽधिकम्।
जातस्नेहस्य चार्थेषु विप्रयोगे महत्तरम्।।

महा.आ.प. १५६.२४

जीवन में प्रथम तो धन कमाना ही कठिन है। उसके बाद कमाए गए धन की रक्षा करना उससे भी कठिन है। जिसको जीवन में धन के प्रति प्रेम हो जाता है। उस धन के नष्ट होने पर उसको महान् दु:ख होता है। अत: धन सभी प्रकार से दु:ख का कारण है।

संस्कृत-साहित्य में गीति, मुक्तक तथा शतक काव्यों का अन्तः सम्बन्ध एवं वैशिष्ट्य

–डॉ. राजेश सिंह

द्वितीय शती से प्रारम्भ हुई संस्कृत-शतक-परम्परा की काव्यधारा पुण्य-सलिला भागीरथी के समान निरन्तर परिपुष्ट होती हुई, सहृदयों को रससिक्त करती हुई, अविरल रूप से प्रवाहित हो रही है। संस्कृत-शतक परम्परा, गीति साहित्य के मधुरतम रूप को, हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। किसी भी साहित्य का सबसे सुन्दर अंग उसका गीतिकाव्य ही होता है, क्योंकि 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की जितनी कोमल और मधुर अभिव्यक्ति इसमें होती है उतनी अन्यत्र नहीं। इस दृष्टि से संस्कृत का गीतिकाव्य बड़ा ही समृद्ध है। उसकी यह गुण-समृद्धि, दीर्घकालीन विकास-परम्परा का परिणाम है। ऋग्वेद में जहां-तहां प्रकट हुई, यह क्षीण निर्झरिणी, अनेक व्यापक घटनाओं के फलस्वरूप विभिन्न दशाओं से प्रवहमान, जनमानस की सहस्रधारा की प्रवृत्ति का संगम पाकर, भावों की शान्त समतल भूमि पर कल-कल ध्वनि से बहने लगी थीं। अनेक मनीषियों ने इस पावन गङ्गा में स्नान किया और असंख्य लोगों को इसके रसामृत का प्रसाद बाँटा'।[1]

संस्कृत शतक-काव्य, लघु कलेवर होते हुए भी अपने में असीम माधुरी समेटे हुए हैं। संस्कृत में गीतिकाव्य मुक्तक तथा प्रबन्ध दोनों ही प्रकारों में उपलब्ध है। संस्कृत-शतक, गीति की दोनों ही शैलियों में लिखे गये हैं। स्तुति-शतकों को प्रबन्ध-गीति के अन्तर्गत तथा वैराग्य, नीति एवं शृङ्गार- परक शतकों को मुक्तक-गीति का भेद माना जा सकता है। संस्कृत-साहित्य में महाकाव्यों की परम्परा अपनी महिमामयी गरिमा के साथ सुप्रतिष्ठित है, तथापि भावान्विति, रसान्विति एवं माधुर्य की दृष्टि से 'गीतिकाव्य' का अपना एक विशिष्ट स्थान है। संस्कृत-गीतिकाव्य के मूल तत्त्व ध्यातव्य हैं[2]–

क. आत्मनिष्ठा या अन्तर्वृत्ति की प्रधानता

ख. संगीतात्मकता

ग. निरपेक्ष या पूर्वापरसम्बन्धविहीनता

घ. रसात्मकता

ङ. रागात्मक अनुभूतियों की सान्द्रता

च. भावसान्द्रता   छ. चित्रात्मकता

ज. प्रभावपूर्णता   ञ. मार्मिकता

ट. संक्षिप्तता

ठ. सरलतम तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति

ड. स्वाभाविक अन्तः प्रेरणा।

'भावप्रवणता' गीतिकाव्य का प्राण है। कवि की रागात्मक अनुभूति का उद्रेक ही काव्य के रूप में परिवर्तित हो जाता है। गीति के माध्यम से कवि

१. संस्कृत गीति काव्य का विकास- डॉ. परमानन्द शास्त्री, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ, वि.सं. २०२२, पृ. -१

२. संस्कृतगीतिकाव्यानुचिन्तनम्- डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, सुशीला प्रकाशन, धौलपुर, १९७०, पृ.-५

[illegible] व्यष्टिरूप अनुभूति को' सार्वजनीन एवं [illegible] बनाकर 'समष्टि रूप' प्रदान करता है। उसका स्वयं का सुख-दुःख का अनुभव विश्व का सुख-दुःख बन जाता है। माधुर्य एवं प्रसाद का प्रसार, संक्षिप्तीकरण एवं गेयात्मकता, गीतिकाव्य के अभिन्न अङ्ग हैं। भावान्विति के द्वारा रसान्विति को पुष्ट करना गीतिकाव्य की निजी विशेषता है।

'गीतिकाव्य में विषय का आधार तो नाममात्र का रहता है, वस्तुतः वह कवि के व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है। गीतिकाव्य के विषय के लिए कवि अपने से बाहर नहीं जाता, प्रत्युत, आत्मसात् किये गये विषय को अपने व्यक्तित्व के रंग में रंग कर इतनी सुन्दरता से, इतने मोहक शब्दों में व्यक्त करता है कि वह उसकी अपनी चीज होती है- विशुद्ध तथा परकीयत्व से नितान्त अमिश्रित"[३]। इस प्रकार संस्कृत गीतिकाव्य की निम्न विशेषताएं अवधारणीय हैं-

(क) विषय वैविध्य (यथा- शृङ्गार, नीति, वैराग्य, प्राकृतिक दृश्यादि) चित्रण (ख) विधागत वैशिष्ट्य-प्रवन्ध और मुक्तक रचनाओं का समावेश (ग) छन्द माधुर्य (घ) कला एवं भाव सौन्दर्य का सामञ्जस्य (ङ) प्राकृतिक चित्रण (च) प्रेम और शृङ्गारपरक गीतियों का बाहुल्य (छ) सामञ्जस्यपूर्ण अनुभूति (ज) सूक्ष्म संवेदन (ञ) चर्वणा प्रक्रिया का समावेश (ट) भावानुकूल वातावरण (ठ) स्वच्छन्दतावाद का स्पर्श (ड) सुकोमल भावना (ढ) विचार साम्यता (ण) भाषागत माधुर्य और चित्रात्मकता[४]।

उक्त विशेषताओं से युक्त 'विषय वैशिष्ट्य की दृष्टि से संस्कृत का गीतिकाव्य अत्यन्त सम्पन्न है। उसमें कहीं प्रेम की मन्दाकिनी बह रही है तो कहीं करुण रस की धारा, कहीं जीवन का उल्लासमय संगीत है तो कहीं विरह के मार्मिक उद्‌गार।' संस्कृत गीतिकाव्य का अधिकतम साहित्य मुक्तक शैली में लिखा गया है। मुक्तक में निम्न तत्त्वों का समाहार आवश्यक है-[५]

क. रमणीयता ख. रस-चर्वणा

ग. रसानुभूति के माध्यम से रस-चर्वणा

मुक्तक काव्य की अपनी सीमायें हैं। एक पद्य की सीमा में रहकर ही कवि को अपने हृदय की समस्त रसमाधुरी को अभिव्यक्त करना होता है, जो कि निस्सन्देह ही कठिन कार्य है। संक्षेप में मुक्तक की परिभाषा निम्न प्रकार की जा सकती है- 'मुक्तक उस पद्य को कहते हैं, जो परतः निरपेक्ष रहता हुआ भी पूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति में समर्थ हो, चमत्कारपूर्ण गुम्फन एवं ध्वनि आदि विशेषताओं के कारण रमणीय हो, रस-चर्वणा में ब्रह्मानन्द सहोदर हो एवं रसानुभूति के द्वारा हृदय को मुक्त बनाने में समर्थ हो।[६] मुक्तक के दो रूप

---

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ. ३२१

४. संस्कृतगीतिकाव्यानुचिन्तनम्, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, सुशीला प्रकाशन, धौलपुर, १९७०, पृ.-२४

५. वही, पृ.-२५

६. ध्वन्यालोक, टीका, ३/६३

मिलते हैं- क. प्रगीत मुक्तक या गीतिकाव्य ख. प्रकीर्णक।

आचार्य शुक्ल जी की दृष्टि में- 'मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, इसके कथाप्रसंग में, अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिससे हृदय थोड़ी देर के लिए खिल उठता है। यदि प्रबन्ध-काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता।'[७]

सामान्यत: मुक्तक काव्य के दो भेद हैं-

क. वाच्य मुक्तक- ऋग्वेद, रामायण, महाभारत से प्राप्त गीति।

ख. गीति मुक्तक- मेघदूत, अमरूकशतक, गीतिगोविन्द आदि।

गीतिकाव्य की दृष्टि में प्राप्त गीतिमुक्तक को निम्न ढंग से विभाजित कर सकते हैं- (क.) परोक्षानुभूतिपरक गीतिकाव्य, (ख) स्वानुभूतिपरक या आत्मानुभूतिपरक गीतिकाव्य, (ग) एकभावान्वित दीर्घबन्ध गीतिकाव्य, (घ) तालबद्ध गीतिकाव्य, (ङ) स्तुतिपरक गीतिकाव्य, (च) स्वच्छन्द गीतिकाव्य

संस्कृत शतक-परम्परा का अन्तर्भाव गीतिकाव्य के अन्तर्गत होता है। अत: कीतिकाव्य एवं मुक्तककाव्य की समस्त विशेषताओं का समावेश 'शतक' काव्य में हो जाता है। संस्कृत-शतक परम्परा के आदि प्रणेता हैं- आचार्य समन्तभद्र। आप दिगम्बर जैन परम्परा के उद्‌भट दार्शनिक, प्रकाण्ड पण्डित, निर्भीक नैयायिक एवं ख्यातिलब्ध आचार्य के रूप में मान्य हैं। दिगम्बर जैन संस्कृत-परम्परा के आप आदि कवि हैं। आपका समय ईसा की द्वितीय शताब्दी है। आपसे पूर्व का, जैन संस्कृत साहित्य, सूत्ररूप में उपलब्ध है, काव्य रूप में नहीं। आपके काव्य में दार्शनिकता एवं कवित्व का मञ्जुल समन्वय है। 'जिनशतकम्' के रूप में, संस्कृत-काव्य परम्परा को आपने एक नवीन विधा प्रदान की। आचार्य समन्तभद्र से लेकर आज तक संस्कृत-शतक परम्परा की धारा निरन्तर प्रवहित है।

शतक का अर्थ होता है १०० का समूह। प्राय: शतक साहित्य का प्रचलन, सभी भारतीय भाषाओं में है। शतक काव्य में १०० से लेकर १२५ तक पद्य रहते हैं। कथ्य की दृष्टि से संस्कृत का शतक-साहित्य वैविध्यपूर्ण है। 'शतक' की परिधि मे सीमित रहकर कवि को अपने भावों की अभिव्यक्ति करनी होती है। अत: शतक-साहित्य का कथ्य महाकाव्य के समान कथात्मक नहीं होता, वरन् प्रत्येक पद्य अपने आप में चमत्कारपूर्ण रसमाधुर्य से ओतप्रोत रहता है। कवि को अपनी काव्यप्रतिभा अथवा वर्णनशैली का कौशल, सूक्ष्मता से ही दिखाना होता है और इस सीमा में वही कवि सफल हो सकता है जो भावान्विति से युक्त हो। क्योंकि गीति की आत्मा भावातिरेक ही है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति तथा कल्पना से विषय वस्तु को भावात्मक बना

७. मुक्तक काव्यपरम्परा और बिहारी, डॉ. रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली १९६६, पृ.-४

देता है।[८]

संस्कृत-शतक साहित्य का आरम्भ ईसा की द्वितीय शताब्दी से होता है। आचार्य समन्तभद्र, दिगम्बर जैन परम्परा के प्रख्यात दार्शनिक और नैयायिक थे। उन्होंने उच्चकोटि के स्तुति-काव्यों की भी रचना की। जिससे उनके अनुपम काव्य-कौशल का परिचय मिलता है। उनके स्तोत्रों में, दर्शन तथा काव्य का, न्याय तथा कलाप्रियता का अद्भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उनका काव्य जहां मस्तिष्क को सन्तुष्ट करता है, वहीं हृदय को परितृप्त! अत: उनके काव्य को 'दार्शनिक काव्य' अथवा 'काव्यात्मक-दर्शन' कहा जा सकता है। 'जिनशतकम्' के रूप में उन्होंने संस्कृत-शतक परम्परा का सूत्रपात किया है। दि. जैनपरम्परा में तो वे संस्कृत के आदिकवि ही हैं। उनके पूर्व जैन आचार्यों द्वारा रचित, प्राकृत अपभ्रंश भाषात्मक काव्य प्राप्त होते हैं, संस्कृत-भाषात्मक नहीं। आचार्य उमास्वाति का संस्कृत-ग्रन्थ 'तत्त्वार्थसूत्र' भी जैनपरम्परा का सूत्र ग्रन्थ है, काव्यग्रन्थ नहीं। अत: संस्कृत-शतक परम्परा तथा जैन संस्कृत-काव्य के आप 'आद्यप्रणेता' हैं।

भारतीय मनीषा ने अर्थ और काम को पुरुषार्थ के अन्तर्गत माना है तथापि अर्थ और काम को किसी के जीवन के अन्तिम लक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। धर्म से नियन्त्रित अर्थ और काम ही, उन्नति की ओर अग्रसर होते हैं। यदि काम की परिणति 'मुमुक्षा' में नहीं होती तो ऐसा 'काम' भयावह तथा विनाशकारी है। भारतीय संस्कृति में इस प्रकार के उन्मुक्त 'काम' के लिए कोई अवकाश नहीं है। संस्कृत शतक-काव्य को कथ्य की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

१. स्तुति-शतक २. वैराग्य-शतक
३. नीति-शतक ४. शृङ्गार-शतक

सबसे अधिक संख्या स्तुति-शतकों की है। स्तुति-शतकों में भक्त-कवियों ने अपने 'आराध्य देव अथवा देवी' के पुनीत चरणों में निश्छल आत्माभिव्यक्ति निवेदित की है। फलस्वरूप स्तुति-शतक, इतने रस-भाव-भरित हो गये हैं कि उनकी रस-सरिता में जो सहृदय अवगाहन करता है, वह भी भक्तिरस से आप्लावित हो, धन्य हो उठता है। इन स्तुति-शतकों के 'रस-माधुर्य' का पान करने के पश्चात्, सहृदय पाठक, नवीन चेतना एवं स्फूर्ति का अनुभव करने लगता है। 'स्तुति-शतक' तो स्वभावत: वैराग्य का पोषण करने वाले होते हैं। 'शान्त-रस' का चमत्कार इन शतकों में विशेष रूप से परिलक्षित होता है। भक्ति तो मोक्ष-साधिका है ही, बल्कि भक्ति को मुक्ति का द्वार कह दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। मानमर्दन के लिए भक्ति से अधिक प्रभावशाली अन्य कोई साधन नहीं है। हृदय की विशुद्धि, भक्ति के बिना हो ही नहीं सकती। भक्ति एक ऐसा रसायन है; जिसके उपयोग से रजस् और तमस् सत्त्व में परिणत हो

८. संस्कृत गीति काव्य का विकास डॉ. परमानन्द शास्त्री, प्रकाशन प्रतिष्ठान, मेरठ, वि. सं. २०२२, पृ.२८

उठते हैं। सांसारिक काम ही, आराध्य की भक्ति में परिवर्तित होकर, मुक्ति का साधक बन जाता है। इन भक्तिशतकों की पावन गङ्गा में डुबकी लगाकर सहृदय पाठक दिव्य-पवित्रता का अनुभव कर सकते हैं।

संस्कृत वैराग्य-शतकों में वैराग्य की ऐसी निर्झरिणी प्रवाहित हुई कि पाठक 'स्व-रस' के पान की ओर स्वतः उन्मुख हो उठता है। प्रथम पुरुषार्थ 'धर्म' से वैराग्य का सूत्रपात होता है तथा उसका समापन अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' में होता है, जो कि चरम-आनन्द की दशा है। ये शतक आत्म-विज्ञान के रमणीय काव्य हैं। सभी विज्ञानों में आत्म-विज्ञान को श्रेष्ठ माना गया है। 'आध्यात्मिकविद्यानां' तथा 'आत्मानं विद्धि' उपनिषदों के ये वाक्य-आत्मज्ञान की ओर प्रेरित करते हैं। वैराग्य-शतकों के अन्तर्गत वे शतक आते हैं, जो आध्यात्मिक आनन्द का आस्वादन कराते हैं तथा इस नश्वर संसार की असारता को सिद्ध करते हुए, वैराग्य की ओर उन्मुख करते हैं। इस प्रकार के शतकों में, जीवन-पथ के लिए महत्त्वपूर्ण 'पाथेय' प्राप्त होता है। एक प्रकार से इन्हें 'दार्शनिक-काव्य' की संज्ञा दी जा सकती है। जीवन से निराश, उदास और हताश व्यक्तियों के लिए, उक्त प्रकार के शतक 'रसायन' का काम करते हैं। जिनका रसास्वादन कर, जीवन-दृष्टि ही परिवर्तित हो जाती है तथा शोक-संतप्तहृदय, अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगता है।

संस्कृत नीतिकारों ने भी 'नीति' का अन्तिम लक्ष्य 'आत्म विशुद्धि' ही माना है। भर्तृहरि के नीतिशतक में न्यायमार्ग पर अविचल रहने के लिए कितनी सुन्दर उक्ति का प्रयोग हुआ-

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥[९]

संस्कृत के नीतिशतक, व्यक्तित्व के विकास के लिए तथा व्यावहारिक जीवन में सफलताहेतु अनुकरणीय हैं। व्यक्तित्व को बहुमुखी बनाना ही काव्य का मुख उद्देश्य है। नीतिशतकों से लोक-व्यवहार तथा नीतियों का ज्ञान प्राप्त होता है। ये नीतियां, प्रायः व्यावहारिक अनुभव पर आधारित रहती हैं। विषय की दृष्टि से इन नीतियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, जिनमें दर्शन के गूढ़तम सिद्धान्तों से लेकर दैनिक व्यवहार तक की नीतियों का सुन्दर वर्णन है। संस्कृत-नीतिकारों में 'अन्योक्ति' अत्यन्त प्रिय माध्यम रहा है। 'अन्योक्ति' के माध्यम से कवि पुष्प, वृक्ष, फल, मेघ, समुद्र आदि को सम्बोधित कर, नीतियों का उपदेश देता है। अन्योक्ति में व्यंग्यार्थ ही ग्राह्य होता है, वाच्यार्थ नहीं। इस प्रकार के शतकों को उच्चकोटि का व्यंग्य-काव्य भी कह सकते हैं। संस्कृत-शतककारों ने 'अन्योक्ति' के माध्यम से अपने काव्य-नैपुण्य तथा लोक-व्यवहार के ज्ञान को अत्यन्त कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

९. नीतिशतकम्, भर्तृहरि, पद्य-७९

शृङ्गार तो स्वभावत: ही मधुर रहता है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने तो 'शृङ्गार' को अन्य रसों की अपेक्षा सबसे अधिक आह्लादक एवं मधुर माना है–

शृङ्गार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः।
तन्मयं काव्यमाश्रित्य माधुर्यं प्रतितिष्ठति।।[१०]

शृङ्गार-शतकों में कवियों की काव्य-माधुरी अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ प्रकट हुई है। लौकिक व्यवहार में जो 'शृङ्गार' रजोगुण का कारण होता है, काव्य में वही सतोगुण में परिवर्तित हो जाता है। क्योंकि रसानुभूति में स्वत: ही सत्त्व का उद्रेक हो जाता है, तथा रजस् और तमस् नियन्त्रित हो जाते हैं। संस्कृत-शतकों में 'शृङ्गार' को इतने लालित्य एवं रम्यता के साथ प्रस्तुत किया गया है कि सहृदय पाठक चमत्कृत हुए बिना नहीं रह सकता। भावों की सुकुमारता, कल्पना की मनोहरता, पदों का लालित्य संस्कृत-शृङ्गार शतकों की अपनी निजी विशेषतायें हैं। शृङ्गार-शतककारों ने भी शृङ्गार को जीवन का अन्तिम लक्ष्य नहीं माना है।

शृङ्गारशतकों में भी व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित प्रयास किया गया है। संस्कृत- शतक आज के दिशाहीन मानव को सन्मार्ग पर आरूढ़ कराने में सहायक हो सकते हैं। वर्तमान युग के सन्दर्भ में ये शतक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। आज जिस गति से 'जीवन-मूल्य' गिरते जा रहे हैं, वह मनीषियों, कवियों, परोपकारी समाज-सेवियों के लिए चिन्ता का विषय हैं। इन शतकों का रसास्वादन कर, पाठकों की अभिरुचि परिष्कृत होगी तथा विकास की ओर उन्मुख होने की सम्भावना परिपुष्ट होगी। समाज में आध्यात्मिकता, नैतिकता आदि मानव- मूल्यों की स्थापना होगी।

'मानव जीवन की चेतना उसकी अन्तर्वृत्तियों में है। उनके अभाव में मनुष्य केवल प्रतिमा बन कर रह जाता है। अत: इन अन्तर्वृत्तियों के परिष्कार और उदात्त रूप की चिरस्थायित्व का प्रश्न भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। कवि का हृदय अन्तर्वृत्तियों के इस स्वरूप को, काव्य में बाँध रखने का प्रयत्न अनायास ही करता है। अत: उसका काव्य जीवन की व्याख्या ही नहीं, उसका स्वरूप भी होता है। इसलिए कवेः कृतं काव्यम् को आचार्य मम्मट ने ब्रह्मा की सृष्टि से बढ़कर गाया है–

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।।[११]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि संस्कृत-काव्य, जीवन की विषम परिस्थितियों में भी भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहा है। आनन्द सच्चिदानन्द भगवान् का विशुद्ध एवं पूर्णरूप है। इसलिए संस्कृत-काव्य की आत्मा 'रस' है। 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' ऐसे रस का उन्मीलन तथा श्रोता तथा पाठक के हृदय में, आनन्द का उन्मेष ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है। संस्कृत-शतक-परम्परा काव्य के अन्तिम लक्ष्य का निर्वाह करने में पूर्णत: समर्थ एवं सक्षम है।

–असि. प्रो., संस्कृत विभाग, शिवहर्ष किसान पी.जी. कालेज, बस्ती (उ. प्र.)

१०. ध्वन्यालोक, २/७

११. आचार्य मम्मट कृत काव्यप्रकाश–मङ्गलाचरण

ईश्वर दर्शन

–डॉ. रमण कुमार

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।

(मुंडक उपनिषद् ३.२.४.)

(अयम् आत्मा) यह आत्मा, ईश्वर (बलहीनेन न लभ्यः) बलहीन, बलरहित पुरुष द्वारा प्राप्त होने के योग्य नहीं है। आत्मबल से बलशाली, उद्यमी, कर्मठ, संयमी और सदाचारी पुरुष ही ईश्वर का दर्शन कर पाता है।

इस सृष्टि में मानव जीवन प्राप्त करना हमारे लिए एक सुनहरा अवसर है। कृपालु भगवान् ने हमें मानव जीवन रूपी एक बहुमूल्य भेंट दी है। इस जीवन की हर सांस में भगवान् का आशीर्वाद निहित है। हमारी प्रत्येक शारीरिक, प्राकृतिक और जागतिक क्रियाओं में वे प्रतिक्षण क्रियाशील हो रहे हैं। ऐसे कृपालु भगवान् को अगर हमने भली-भांति न जाना, उनकी निर्बाध उपलब्धि न की, तो यह हमारी एक बड़ी भूल होगी।

इसलिए कहा गया है, **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्चः**[१] अर्थात् आत्मा सदा ही दर्शन करने योग्य, श्रवण करने योग्य, मनन करने योग्य, अनुभव और ध्यान करने योग्य है।

परंतु मुंडक उपनिषद् का प्रस्तुत वाक्यांश कहता है, 'बलहीन, यानी कमज़ोर, दुर्बल पुरुष ईश्वर की उपलब्धि नहीं कर सकता है।' वे बलशाली पुरुष कौन हैं जो सदा ईश्वर का दर्शन करते हैं? क्या उनमें हमारी गिनती हो सकती है?

लोक में शारीरिक बल से संपन्न व्यक्ति को हम बलशाली कहते हैं। परंतु व्यक्ति का सर्वांगीण विकास केवल शारीरिक बल से नहीं होता। शारीरिक बल के साथ मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक आदि बलों की प्रबलता, प्रचुरता भी विकास के लिए अपेक्षित होती है।

ईश्वरप्राप्ति के लिए शारीरिक बल महत्त्वपूर्ण नहीं है, अपितु मानसिक या आत्मिक बल की ऊर्जा की आवश्यकता है और ऊर्जा की इतनी बहुलता हो कि वह हमें ही नहीं, अन्यों को भी प्रेरित और प्रभावित करती रहे।

वृक्ष पर फूल तब खिलते हैं, फल तब लद जाते हैं जब सभी प्रकार की जैविक ऊर्जाएं वृक्षों के रोम-रोम में अठखेलियां भरती हैं। वृक्ष की अतिरेक ऊर्जाएं फूल के रूप में कहीं सुगंध बिखेरती हैं तो कहीं आम और अनार के फल बनकर रसीले सत्त्वों में अपने को उभारती हैं। अगर वृक्ष में ऊर्जाओं की कमी हो तो फूल और फल तो दूर की बात, पत्ते तक पैदा नहीं हों।

बादल भी तब बरसते हैं जब जलभाररूपी ऊर्जाओं के अतिरेक से वे लद जाते हैं। नदियों में तभी उफान उठने लगता है जब पर्याप्त जलराशि

१. बृहदारण्यकोपनिषद् २.४.५.

रूपी ऊर्जाओं से वे लबालब भर गई होती हैं। धरती पर तभी वृक्ष-वनस्पतियों की भरमार दिखाई पड़ती है जब वर्षा ऋतु की जलवृष्टि रूपी ऊर्जाओं से धरती पर सुप्त बीज भी प्रभावित होकर अंकुरित होने लगते हैं।

इसी प्रकार ईश्वरप्राप्ति के लिए भी मानवगत समस्त प्रकार के बलों और ऊर्जाओं की प्रचुरता आवश्यक है। कहा भी गया है, **भूमैव सुखम्, भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति**[२] भूमा अर्थात् प्रचुरता में ही सुख है, आनंद है। ईश्वर भूमा है, अत: उस ईश्वर को प्रचुरता रूप में समझ लेना चाहिए। **नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्**[३] अल्प-अवस्था में, सीमितता में सुख नहीं है, सुख तो प्रचुरता में है।

छोटा सा दीपक हो, तो जरा सा हवा का झोंका उसे बुझा देता है। अगर जंगल में आग लगी हो तो बड़े से बड़े हवा का झोंका भी उसे बुझा नहीं सकता, अपितु उसे फैलाने में मदद करता है। अत: हमारा सारा प्रयास व्यापकता की ओर, विशिष्टता की ओर और विलक्षणता की ओर होना चाहिए।

जीवन में शारीरिक, मानसिक और आत्मिक ऊर्जाओं का उत्सर्जन सदा होता रहे और निरंतर ईश्वर-उपलब्धि की ओर हम बढ़ते रहें, इसके लिए हमें पूर्णप्राण से सद्ग्रंथों का दैनिक स्वाध्याय, सदुपदेश का श्रवण, संयम, सेवा, परोपकार आदि में नियमित रूप से रत रहना चाहिए। दीपक में तेल और बाती की जितनी अधिक उत्कृष्टता होगी, उतनी देर तक और अच्छी रोशनी हमें मिलती रहेगी। इसी तरह जितनी प्यास के साथ स्वाध्याय, सत्संग, परोपकार में हमारा प्रवेश होता रहेगा, उतनी मानसिक आत्मिक ऊर्जाओं की प्रबलता, प्रचुरता हममें विद्यमान रहेगी और हम ईश्वर की उपलब्धि की ओर उतनी शीघ्रता से बढ़ते जाएंगे।

हमारे भीतर ऊर्जा हो, मानसिक और आत्मिक बल हो तो परमात्मा की ऊर्जा, नैसर्गिक शक्ति भी हमारी ऊर्जा में संयुक्त हो जाती है। जब हमारी ऊर्जाओं को सदा पनपते रहने के लिए ईश्वरीय ऊर्जा रूपी एक अक्षय स्रोत मिल जाता है तब हमें कण-कण में, अणु-अणु में ईश्वर-दर्शन होने लगता है।

-सी-२२, राजौरी गार्डन, नई दिल्ली-११००२७

---

२. छांदोग्य उपनिषद् ७.२३.१

३. वही, ७.२३.१.

विष्णु के तीन कदम

–डॉ. रामप्रकाश आर्य

प्रचलित कथा है कि भगवान् विष्णु एक संन्यासी का वेष बनाकर राजा बलि के पास गए। राजा बलि सहृदय उदार और दानशील थे। उन्होंने संन्यासी से कहा, जो भी तुम्हें चाहिए वह मांग लो। भगवान् विष्णु ने तीन कदम रखने की जगह मांगी। राजा बलि को बहुत विचित्र लगा। उसने सगर्व कहा, कदम बढाओ और जितनी चाहो उतनी जमीन ले लो। विष्णु ने पहला कदम अंतरिक्ष में रखा, दूसरा पृथ्वी पर और तीसरे कदम के लिए कोई स्थान नहीं था। उन्होंने तीसरा कदम बलि के सर पर रखा और उसे (बलि को) पाताल-लोक में भेज दिया।

इस कथा में विष्णु को वामनावतार कहा गया है। आज के युग में यह कथा अवैज्ञानिक, अतार्किक और अविश्वसनीय प्रतीत होती है। कहा यह भी जाता है कि कथा का ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में संकेत है। बात सत्य है, पर यह भी संभव है कि उन मन्त्रों का अर्थ समझने में कुछ भूल हुई हो। पहली बात तो यह है कि भगवान् के विषय में 'अवतार' जैसी कोई चीज नहीं होती। अवतार का शाब्दिक अर्थ है, उतरना। भगवान् तो सर्व-व्यापक है, सब जगह पहले से ही स्थित है। उसे उतरने के लिए कोई ऐसा स्थान ही नहीं है जो रिक्त हो और जहां वह पहले से न हो।

विष्णु का एक अर्थ 'सूर्य' भी होता है, कथा के साहित्यिक सौन्दर्य को देखिए- बात स्पष्ट हो जाएगी। अविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं रहेगा। प्रातःकाल का सूर्य उदित हो रहा है, वह बहुत छोटा-सा, अर्थात् वामनरूप में दिखाई पड़ता है। बलि का अर्थ अन्धकार है, जो तीनों लोकों में फैला हुआ दृष्टिगोचर होता है। बाल-सूर्य ने तीन कदमों के लिए स्थान माँगा। सूर्य की पहली किरण आकाश में दृष्टिगोचर हुई, दूसरी पृथ्वी पर प्रसृत हो गई और तीसरी के लिए पाताल के अतिरिक्त कोई स्थान शेष नहीं रहा। ये किरणें ही भगवान् विष्णु के तीन चरण हैं।

ऋग्वेद (१.२२.७) का मन्त्र है '**इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्**'। अनेक नामों में विष्णु भगवान् का एक नाम है। '**विष्लृ व्याप्तौ**', वह सारे संसार में व्याप्त है। भगवान् ने सब संसार की रचना की, तो बिना सोचे-समझे काम नहीं किया। सभी पदार्थों को विशेष क्रम में रखा। उस सर्वेश्वर का पराक्रम सम्पूर्ण जगत् में दृष्टिगोचर हो रहा है- कहीं अव्यवस्था का नाम नहीं है। दार्शनिक दृष्टि से किसी भी प्रकार की उत्पत्ति के तीन कारण बताए गए हैं, अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण-रूप। त्रेधा शब्द में इन्हीं तीनों की ओर संकेत है। उसकी व्यवस्था के ये तीनों पग (अंतरिक्ष, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों में, दृष्टिगोचर होते हैं।

एक और मन्त्र में भी विष्णु के तीन पदों **'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः'** का उल्लेख है। अर्थात् जो इन्द्रियों अथवा पृथ्वी इत्यादि का पालक है और अदाभ्यः, अर्थात्, किसी से दबने वाला नहीं है, उस परमेश्वर को न कोई धमका सकता है और न डरा सकता है। वह उत्पादक भी है, धारक भी है और पालक भी है। उसके शासन में किसी की दखलंदाजी संभव नहीं है, इसीलिए उसकी व्यवस्था सुचारु, क्रमबद्ध एवं सराहनीय है।

विष्णु का पद (Post) सर्वोच्च है; उसे 'परमं पदं' कहा जाता है। उस पद पर पहुँचना मानव के लिए संभव नहीं है। परम का अर्थ सर्वोत्तम अथवा, most best, होता है। वह भले ही न मिले किन्तु हम उसके पास तक तो पहुँच सकते हैं। विष्णु-भक्तों का कर्तव्य है कि उसके पदों के पास पहुँचाने का प्रयत्न करें तथा यथासंभव उसके गुणों को धारण करें। वह तो सर्वव्यापक है। हम भी अपना स्नेह, अपना सन्देश, अधिकाधिक जन तक पहुँचाएं। उन्होंने तीनों लोकों से अन्धकार को दूर किया है। हम भी अविद्या, अन्याय, अत्याचार के तमस् को दूर करने का प्रयत्न करें। उन्होंने सृष्टि का निर्माण एक विशेष क्रम में किया, हम भी अपने कार्यों में क्रमबद्धता को प्रश्रय दें। कौन-सा काम कब, किस समय और किस स्थान पर करें- इसका हमें ज्ञान होना चाहिए। ज्ञान, विज्ञान तथा सदा जागृत रहना- इन तीनों गुणों से सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। हम इन्हें अपनाएं- यही विष्णु के तीन पद हैं। ये गुण अपने तक ही सीमित न रहें। इनका आभास औरों को भी पहुंचाना चाहिए, सच्चा वैष्णव बनना चाहिए- **'वैष्णव जन तो तेणें कहिए जे पीर पराई जाणें रे।'**

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूहूळमस्य पांसुरे (ऋ. १.२२.७)

-द्वारा डॉ. नमिता आर्या, ४०५, देवप्रस्थ अपार्टमेन्ट, पावर हाऊस रोड, रतलाम (म. प्र.) ४५७००१

पुरतः कृच्छ्रकालस्य धीमान् जाग्रति पूरुषः।
स कृच्छ्रकालं सम्प्राप्य व्यथां नैवेति कर्हिचित्।।

महा.आ.प. २३१.१

बुद्धिमान् व्यक्ति अपने जीवन में किसी भी प्रकार के संकट आने की संभावना से पहले से ही सजग हो जाते हैं (और उसका प्रतीकार भी सोच लेते हैं)। यही कारण है कि संकट आने पर भी वे कभी दु:खी नहीं होते अर्थात् उसका निवारण कर लेते हैं।

गीतांजलि के आधार पर रवींद्रनाथ टैगोर का जीवन-दर्शन

–प्रो. अमनप्रीत कौर

बांग्ला साहित्य की महान् विभूति रवींद्रनाथ टैगोर एक ऐसे कवि एवं दार्शनिक हुए हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से समस्त संसार को एकदृष्टि से देखते हुए उसका अवलोकन कर उसे साहित्य-साधना का विषय बनाया। वह बांग्ला साहित्य के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना में नयी जान प्रदान करने वाले युगद्रष्टा थे। ऐसे पुरुष का जीवन बहुत ही साधारण रहा। रवींद्रनाथ टैगोर ने साहित्य की विभिन्न विधाओं, संगीत और चित्रकला में सतत सृजनरत रहते हुए अंतिम सांस तक माँ सरस्वती की साधना की। भारतवासियों ने उन्हें गुरुदेव की उपाधि से सम्मानित किया। रवींन्द्रनाथ टैगोर एशिया के पहले भारतीय थे, जिन्हें उनकी पुस्तक गीतांजलि के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। गीतांजलि उनकी सर्वाधिक प्रशंसित और पठित पुस्तक है। मूलत: गीतांजलि बांग्ला भाषा में लिखी गई है। जिसका बाद में रवींद्र ने स्वयं अंग्रेज़ी अनुवाद भी किया। हिन्दी में भी इसके कई अनुवाद किये जा चुके हैं। उनके व्यक्तित्व की बात करें तो उनका समस्त साहित्य उनकी चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करता है। वह एक ऐसे महापुरुष थे जिन्होनें भौगोलिक सीमाओं को तोड़ ऐसा चिंतन हमारे सामने रखा, जिसे विश्वबंधुत्व की संज्ञा दी जाती है। मानवता के लिए उनका प्रेम उनकी रचनाओं में देखने योग्य है। साहित्यकार जीवन का पर्यवेक्षक ही नहीं, जीवन का द्रष्टा भी होता है। अपनी कृतियों के माध्यम से जीवन के प्रति प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करता है। जीवन के निरीक्षण, परीक्षण, चिंतन एवं मनन के उपरांत साहित्यकार जिन सत्यों, मूल्यों तथा विश्वासों को प्रस्तुत करता है उन्हीं को जीवन-दर्शन की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। प्रत्येक रचना का वैशिष्ट्य उसमें निहित साहित्यकार का सशक्त जीवन-दर्शन ही होता है। उनकी रचनाएँ केवल उनकी आत्माभिव्यंजना का ही विषय नहीं थीं अपितु उनका मानव-जाति के प्रति प्रेम उनमें द्रष्टव्य है। गीतांजलि उनकी ऐसी महान् कृति है जिसने उन्हें विश्वविख्यात बनाया। इस कृति में उनके विचार और उनका जीवन-दर्शन विश्व को एक-सा प्रतीत हुआ। गीतांजलि उनकी विश्वशांति स्थापित करने की कोशिशों को प्रस्तुत करती है। उन्होंने मानवतावाद के प्रोत्साहन के लिए कड़ा संघर्ष किया और संसार में सुख-शांति लाने के लिए जनसमूह को प्रेरित किया। ऐसी ही मानवतावादी भावना गीताजंलि में द्रष्टव्य है। उनका मानना था कि जो व्यक्ति देश व मानवमात्र के कल्याण के लिए जीता है उसके जीवण का प्रयोजन व्यापक हो जाता है। वह

अपने मार्ग के कष्टों को कुछ नहीं मानता। कल्याणमय जीवन बिताना सबके लिए जीना है।[1] रवीन्द्र किसी भी तरह के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते। वह अपने जीवन में जातिगत भेदभाव के विरोधी रहे हैं। इस ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं कि-

अरे अभागे देश, किया जिनका तुमने अपमान,
अपमानों में होना होगा उनके साथ समान।
जिन्हें मनुज के हक से किंचित,
कर रखा है तुमने वंचित।
रखकर सम्मुख खड्ग न फिर भी दिया गोद में स्थान,
अपमानों में होना होगा सबके साथ समान।।[2]

रवीन्द्र किसी भी प्रकार की सामाजिक संकीर्णता के विरुद्ध थे। 'ज्यों-ज्यों उन्होंने दुनिया देखी, त्यों-त्यों उनका यह विचार पक्का होता गया कि सभी देशों की जनता में मित्रता और प्रेम-भावना से आदान-प्रदान के बिना संसार में सुख शांति की आशा करना व्यर्थ है।[3] गीताजंलि में उनकी भ्रातृभाव की संकल्पना की गूंज है। वह साम्प्रदायिकता को त्यागने के पक्षधर थे। सब धर्मों में एकता स्थापित करना चाहते थे। गीतांजलि में वह लिखते है:-

आओ आर्य अनार्य पधारो, हिन्दू मुसलिम भाई,
आओ हे अंग्रेज आज तुम आओ बंधु ईसाई।
आओ ब्राह्मण, कर पवित्र मन सब के कर धर लाओ,
आओ पतित हर्ष पुलकित चित सब अपमान भुलाओ।।[4]

रवीन्द्र का जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण है। उनकी रचनाओं में उनकी यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। वह जीवन को भपूर जीने, धीरज बनाए रखने, विपत्तियों से न घबराने, निराशा, संशय और आलस आदि से दूर रहने की प्रेरणा देते हैं। गीतांजलि में उनका जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण द्रष्टव्य है।[5]

रवीन्द्र ने धन-संचय का सदैव विरोध किया है। उनका मानना था संपत्ति हमें दूसरों से दूर करती है। इसी कारण अपनी रचनाओं में भी वह माया का विरोध करते रहे हैं। रवीन्द्र के अनुसार- 'जो संपत्ति हम अपने लिए संचित करते हैं वह हमें दूसरे से पृथक् करने में सहायक हो जाती है; हमारी संपत्ति ही हमारी सीमा बन जाती है। धन-संचय में व्यस्त व्यक्ति का अहंभाव उसे समभावपूर्ण अध्यात्म-जगत् के द्वार में प्रवेश करने में असमर्थ बना देता है। वह बहुसंचयी व्यक्ति अपनी संपत्ति की संकीर्ण दीवारों में ही स्वयं को आबद्ध कर लेता है।[6]

रवीन्द्र, मनुष्य के जीवन में अहंकार को उसके उत्थान में, ईश्वर प्राप्ति में सब से बड़ी बाधा मानते हैं। मनुष्य अपने अहं और वासनाओं के

१. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, साधना (दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र: २००८), पृ.४५
२. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि (दिल्ली; मनोज पब्लिकेशन्स, छठा संस्करण, २०११), पृ.६६
३. संपा. बन्द्योपाध्याय, असित कुमार, रवीन्द्र रचना संचयन, (नयी दिल्ली: साहित्य अकादमी, १९९९), भूमिका
४. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि (दिल्ली; मनोज पब्लिकेशन्स, छठा संस्करण, २०११), पृ.७२ ५. वही-पृ.८०
६. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, साधना (दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र: २००८), पृ.१८

कारण परमतत्त्व के दर्शन नहीं कर पाता। रवीन्द्र का कथन है- 'हमारी अहंमूलक प्रवृत्तियां या स्वार्थपरक कामनाएं हमारी आत्मा के सच्चे स्वरूप को कोहरे की तरह ढक लेती हैं।'[७] गीतांजलि में भी विभिन्न कविताओं में उन्होंने अहंकार और वासनाओं का त्याग करने के लिए लोगों को प्रेरित किया है। इनके त्याग से ही सात्विक जीवन जिया जा सकता है।[८]

रवीन्द्र किसी प्रकार के आडम्बर या दिखावे को स्वीकार नहीं करते। अपनी 'पूजन भजन साधनाराधन' कविता में वह कहते हैं कि ईश्वरप्राप्ति के लिए किये जाते सारे आडम्बर बेकार हैं, ईश्वर तो किसानों के खेतों में निवास करता हैं।[९]

रवीन्द्र कर्म करने में विश्वास करते हैं। उनका गीता के कथन में पूरा विश्वास है। अपनी कविताओं में वह मनुष्य को कर्मशील बनने की प्रेरणा देते हैं। 'गीता का कथन है कि कर्म करना आवश्यक है क्योंकि कर्म के द्वारा ही हम अपनी प्रकृति का प्रदर्शन करते हैं।'[१०] मनुष्य जितना ही कर्म में प्रवृत्त होता है और अपने प्रसुप्त तत्त्वों को स्पष्टता का रूप देता है उतना ही वह दूर के होनहार को निकट लाता है।[११] गीतांजलि में उनकी कर्म करने की प्रेरणा लक्षित होती है।[१२]

गीतांजलि रवीन्द्र की आध्यात्मिक भावनाओं से परिपूर्ण कृति है। रवीन्द्र बचपन से ही प्रकृति-प्रेमी थे। उनका प्रकृति के प्रति यह प्रेम गीतांजलि में भी देखने योग्य है। रवीन्द्र का कथन है- 'शहरी जीवन में मनुष्य को प्रकृति के वरदान प्राप्त नहीं होते। विश्वात्मा से उसका तारतम्य टूट जाता है, अपने मन की संकीर्ण सीमाओं में ही वह जीवन की उस ज्योति की तलाश करता है जो उसके पथ को आलोकित कर सके। इसलिए उसका सम्पूर्ण जीवन अस्वाभाविक संघर्षों से अभिशप्त रहता है।'[१३] रवीन्द्र प्रकृति में ही विश्वात्मा के दर्शन करते हैं। वह प्रकृति में ही ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। गीतांजलि की अधिकांश कविताओं में प्रकृति में ही वह उस परमतत्व के दर्शन करते हुए दिखाई देते है।[१४]

गीतांजलि की आध्यात्मिक कविताओं में जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मानने की बात स्वत:सिद्ध होती है। रवीन्द्र का कथन है- 'यही मनुष्य का अंतिम लक्ष्य है कि एक को जाने; जो उसके अंदर है, सत्य है और उसकी आत्मा है। यही वह कुँजी है जो आत्मिक जीवन का स्वर्गीय द्वार खोलती

---

७. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, साधना (दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र: २००८), पृ. २५
८. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि (दिल्ली; मनोज पब्लिकेशन्स, छठा संस्करण, २०११), पृ. ११, १२
९. वही, पृ. १२१ १०. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, साधना (दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र: २००८), पृ. ५७
११. वही, पृ. ८४ १२. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि (दिल्ली; मनोज पब्लिकेशन्स, छठा संस्करण, २०११), पृ. १२१
१३. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, साधना (दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र: २००८), पृ. ०९
१४. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि (दिल्ली; मनोज पब्लिकेशन्स, छठा संस्करण, २०११), पृ. १७

है।'[१५] सम्पूर्ण गीतांजलि का स्वर आध्यात्मिक है पर उसमें जीवन को देखने की दृष्टि भी है। रवीन्द्र मनुष्य-जीवन का अंतिम लक्ष्य परमात्मा के भेद को पाना मानते हैं। जब उनका मिलन हो जाता है तो वहां उनमें कोई अंतर नहीं रहता।[१६]

रवीन्द्र की जीवन के प्रति दृष्टि बहुत स्पष्ट है। रवीन्द्र का मानना है कि हम संसार से खाली हाथ ही जायेंगे। जो कुछ भी हमने जीवन में कमाया है वह हमारे साथ ही जायेगा। उनका यहां अभिप्राय अच्छे, बुरे कर्मों से है।[१७]

गीतांजलि रवीन्द्र की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति होने के साथ उनकी जीवनदृष्टि की परिचायक भी है। रवीन्द्र ने ऐसा ही आध्यात्मिक जीवन जिया। उनका मानवतावाद में पूर्ण विश्वास था। इसी कारण उनकी विश्वबंधुत्व और दलितोद्धार की भावना गीतांजलि में देखी जा सकती हैं। रवीन्द्र धन-संचय को सही नहीं मानते। अहं और वासनाओं के त्याग को वह आवश्यक मानते हैं। इसके साथ ही वह मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए आशावादी दृष्टिकोण बनाये रखने के लिए कहते हैं। सच में रवीन्द्रनाथ एक महान् कवि, देशभक्त, समाज-सुधारक तथा उत्कृष्ट दार्शनिक के रूप में देखे जा सकते हैं।

-सहायक प्राध्यापक, जी.टी.बी. खालसा कॉलेज फार वूमैन, दसूहा (होशियारपुर)

१५. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, साधना (दिल्ली; राजपाल एण्ड सन्ज़, प्र: २००८), पृ. ३०
१६. १६. टैगोर, रवीन्द्रनाथ, गीतांजलि (दिल्ली; मनोज पब्लिकेशन्स, छठा संस्करण, २०११), पृ. १७२   १७. वही, पृष्ठ-७९

रात-दिन

-श्री बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'

क्या किया तुमने कि मेरा
मन महकता रात दिन
एक झोंके-सा हवा के
तन बहकता रात दिन।।
लिख दिये तुमने लगन के
मंत्र मेरे भाल पर,
साँस सरगम मुक्त पंछी
बन चहकता रात दिन।।

हर घड़ी हर पल बना
उत्सव उमंगों का मूहूर्त,
भावना में ज्योति का
कंचन दहकता रात दिन।।
भोर के आलोक में
जगमग हुआ सारा जगत,
फूल सौरभ गीत चंदन
बन लहकता रात दिन।।
क्या किया तुमने कि मेरा
मन महकता रात दिन।।

-इंद्रपुरी,
पोस्ट-मानसनगर,
लखनऊ-२३

आज के परिवेश में मनु की सार्थकता

-वैद्य गजानन्द व्यास

मनुर्वै यत्किञ्चावदत् तद् भैषजम्

मनु ने जो कुछ भी कहा वह मानवों के लिए औषध तुल्य कल्याणकारी तथा गुणकारी है।

मनु अपने समय के प्रख्यात तत्वद्रष्टा, धर्मनिष्ठ, न्यायकारी तथा प्रजाप्रिय स्वयंभू शासक थे। इन्होनें अपनी मनुस्मृति में व्यक्ति व समाज के हितकारी धर्मों, नैतिक- कर्त्तव्यों, मर्यादित आचरणों तथा श्रेष्ठ समाज-व्यवस्था के विधानों का निर्धारण किया। इतना ही नहीं उन्होंने मनुष्य के अन्तिम लक्ष्य (मोक्ष प्राप्ति) हेतु आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन भी किया। संक्षेप में कह सकते हैं कि मनुस्मृति समाज के हर पहलु की व्यवस्था सुचारुरूप से रखने का संविधान है।

मनु को विधि-विधान के संहिताकरण के कारण सभी प्रकार के कानूनों के प्रथम पिता के रूप में जाना जाता है। वे सृष्टि के भी प्रथम पुरुष होने के नाते मानवमात्र के वंश-पुरुष होने से भी पूजनीय हैं। यदि मनु द्वारा दी गई व्यवस्था व्यावहारिक एवं उपादेय नहीं होती तो युगों तक अपने अस्तित्व और सत्ता को अक्षुण्ण नहीं रख पाती। राज्यव्यवस्था सुचारु रूप से संचालन हेतु सशक्त सलाहकार-मण्डल की व्यवस्था करते हुए सलाहकारों की योजना तथा अर्हता मनु की आज भी प्रासंगिक है।

मनु ने चार वर्णों के अलावा अन्य किसी जाति व उपजाति का वर्णन नहीं किया। पर न जाने क्यों कुछेक धर्म-निरपेक्ष लोग मनु महाराज की आलोचना के लिए कृत-संकल्प दिखाई देते हैं। उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि केवल सवर्ण जाति ही नहीं बल्कि वे भी मनु के ही वंशज हैं। तात्कालिक दृष्टि से देखा जाए तो वे अपनी राजनैतिक पैठ बनाये रखने हेतु मनु के विरुद्ध भ्रामक प्रचार करने में ही अपना श्रेय समझ रहे हैं।

स्वतंत्र भारत के स्वकीय संविधान की आवश्यकता होने पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी की अध्यक्षता में संविधान-समिति का गठन किया गया। इस समिति में अधिकांश सदस्य आंग्ल सभ्यता में पले-पोशे, प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र-स्मृतियाँ विशेषतया मनुस्मृति, चाणक्यनीति, भर्तृहरि नीतिशतक, कौटिल्य अर्थशास्त्र आदि की श्रेष्ठता से अनभिज्ञ रहे या उन्होंने इनके महत्व को नगण्य मानते हुए इस ओर ध्यान नहीं दिया। अत: उन्होंने मनु की वर्ण-व्यवस्था को नकारते हुए भारत के समस्त नागिरकों को दो भागों में बाँटकर सवर्ण जाति तथा जनजाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यक, दलितवर्ग आदि को ध्यान में रखकर असमानता पूर्ण नियम बना दिए।

एकाकी उत्थान की सोच ने भारत की बौद्धिकता- टेक्नोलोजी- वैज्ञानिक उत्थान को काफी पीछे धकेल दिया। यही प्रमुख कारण है कि भारतीय टेलेण्ट विदेशों में जाकर अपनी प्रखर योग्यताओं से उन देशों को हर क्षेत्र में उन्नत करने में सहयोग प्रदान कर रहा है, इस तथ्य से सभी भारतवासी भलीभांति परिचित हैं। अभी भी वक्त है, यदि भारतीय कर्णधार वास्तव में सच्चे हृदय से देश के शुभचिन्तक हैं तथा देश को उन्नति के शिखर तक पहुंचाना चाहते हैं तो अविलम्ब असमानता पूर्ण नीतियों में बदलाव करें अन्यथा देश हर क्षेत्र में पिछड़ता हुआ रसातल में पहुंच जायेगा।

भारत के उत्थान में दूसरा रोड़ा है एक भाषा व एक नियम का न होना। आजादी के सत्तर वर्ष बाद भी राष्ट्रभाषा की दयनीय स्थिति है। प्रशासनिक कार्यों में आज भी हिन्दी-भाषा उपेक्षित है। परन्तु हिन्दी-भाषा इसलिए आशान्वित है कि वर्ष में एक बार हिन्दी पखवाड़ा अवश्य मनाया जाता है। परन्तु आज शहर ही नहीं बल्कि गाँव-गाँव में अंग्रेजी माध्यम की पाठशालाएं खुलती जा रही हैं। भारत का उत्थान तभी संभव है जब विज्ञान, तकनीकि समस्त कार्य आदि राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही सम्पन्न हों। उदाहरणत: द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यहूदियों को बसने के लिए छोटा-सा भू-भाग दिया गया था जिसे इजरायल कहते हैं। धन्य है यहूदियों का राष्ट्रप्रेम कि उन्होनें अपनी ही भाषा हिब्रु में समस्त (वैज्ञानिक टेक्नोलाजी आदि) कार्य संपादित करते हुए हर क्षेत्र में पारंगत हो देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। इसी प्रकार जापान द्वितीय विश्व युद्ध में समूल नष्ट हो गया था पर जापानी अपनी ही राष्ट्रभाषा में हर क्षेत्र में कार्य संपादित करते हुए उन्नति के शिखर पर पहुंच चुके हैं। इन सबका कारण वहां के निवासियों का राष्ट्रप्रेम-राष्ट्रभाषा में कार्य संपादित करना तथा कठोर नियमों का पालन करना है। पर खेद है कि यह उत्साह भारतवासियों में क्यों नहीं? जो भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व राष्ट्रहित में बिना किसी संकोच के अपना सर्वस्व न्योछावर करने हेतु सदैव तत्पर रहते थे तथा समय आने पर हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि भी दे देते थे, पर खेद है कि स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद वे ही भारतीय देश के लिए नहीं वरन् केवलमात्र अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वफादार होते जा रहे हैं। इस बात की पुष्टि आए दिन उजागर होने वाले घोटालों से स्वत: ही सिद्ध हो जाती है।

भारतीय नीतिशास्त्रज्ञों ने संविधान में प्रजा के अधिकारों को जिस प्रभावी ढंग से दर्शाया तथा उनकी पालना में कानून का सहयोग प्रदान किया उतनी ही मजबूती के साथ कर्त्तव्यों का वर्णन नहीं किया। फलस्वरूप नागरिक तथा युवा-पीढ़ी अधिकार प्राप्ति के नशे में नैतिकता व राष्ट्रप्रेम आदि से पीछे हटती जा रही है। अमर्यादित भाषा अव्यवहारिकता, अनुशासनहीनता, उद्दण्डता उनमें कूट-कूट भरती जा रही है, परिणामस्वरूप आए दिन देश में अशान्ति बनाये रखने के लिए नए-नए बहाने ढूंढे जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में मनुस्मृति में वर्णित निर्देशों का अनुसरण करना

नितान्त आवश्यक है जहां कहा गया है कि- दण्ड ही प्रजा की रक्षा तथा शासन करता है। बिना दण्ड के सभी वर्ण दूषित- अमर्यादित उद्दण्ड व आक्रोशित होने में देर नहीं लगायेगें। अत: दण्डप्रक्रिया ऐसी हो कि अपराधी को अपराध करने के पूर्व दस बार सोचना पड़ें। (मनु ७/१८;२४)

यद्यपि भारतीय दण्डसंहिता में दुष्टों के दमनहेतु कई नियम बने हुए हैं तथा समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार उनमें बदलाव भी होते रहे हैं पर कामयाबी इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि भारतीय प्रजातंत्र में कुछ विशेष वर्ग के लोग अपने प्रभाव से अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए इन दुष्टों को दण्डित होने से बचा लेते हैं।

अन्त में निवेदन है कि आज के परिवेश में मनुस्मृति की सार्थकता उतनी ही गरिमापूर्ण है जितनी कि आदिकाल में थी। पर आवश्यकता है कि देश के कर्णधार इसकी नीतियों का गहन अध्ययन कर इन्हें नये नियमों में रूपान्तरित कर दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित करें तभी देश उत्थान की ओर अग्रसर हो सकता है। इस संबंध में कुछ सुझाव अवलोकनीय हैं-

१. एक देश, एक भाषा, एक कानून दृढ़तापूर्वक लागू होना चाहिए।

२. बालक से वृद्ध तक सभी भारतीयों में राष्ट्रप्रेम व वफादारी जगाना जरूरी है।

३. अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार श्रेष्ठ है पर जो भी व्यक्त किया जाये वह प्रामाणिक होना चाहिए न कि आधाररहित, भ्रामक, अव्यावहारिक हो, ऐसा होने पर उसके लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

४. मनु के अनुसार आततायी को दण्डित करना चाहिए। पर भारतीयों का यह स्वभाव बना हुआ है और कह देते हैं कि 'वह बेचारा क्या करे? परिस्थितिवश गुमराह हो गलती कर बैठा। लेकिन मनु कहते हैं कि दुष्टों के प्रति दया अनार्य लोग किया करते हैं जो उनके प्रति दया भाव रखते हैं वे भी दण्डनीय हैं।

५. राजनैतिक पार्टियों को चाहिए कि विधायक व सांसद का चयन करने से पूर्व मनुस्मृति में उद्धृत गुण उनमें होने अनिवार्य हों।

६. वर्तमान में इन पदों पर चयनहेतु लोग करोड़ों रूपया खर्च करते हैं। क्योंकि इन पदों से आर्थिक व सामाजिक लाभ प्राप्त होने की संभावना रहती है। अतः इन लोगों में देश के प्रति ईमानदारी एवं कर्तव्यनिष्ठा की भावना होना आवश्यक है।

७. वर्तमान में देश की राजनैतिक पार्टियां सत्ता प्राप्ति की आपसी होड़ में है। इससे देश का लोकतंत्र खतरे में पड़ सकता है।

८. ईश्वर सभी राजनैतिक पार्टी प्रमुख तथा कार्यकर्ताओं को सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे वे अपने निज हित त्याग कर मनुस्मृति के नियमों का पालन करते हुए देशहित को सर्वोपरि मानें ताकि देश पुनः विश्व-गुरु की गरिमा प्राप्त करने योग्य बन सके।

– आयुर्वेदाचार्य, मोहनपुरा, आबू पर्वत (राजस्थान)। मोब: 98290-38602

भारतीय दर्शन के विकास में बिहार के प्राचीन ऋषियों, महर्षियों एवं दार्शनिकों का योगदान

–डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

प्राचीनकाल से भारत के इतिहास में बिहार के मिथिलाक्षेत्र के दरभंगा की जीवन-शैली आध्यात्मिक थी। यदि भारत के प्राचीन इतिहास से बिहार प्रदेश का इतिहास अलग कर दिया जाय तो उसका आदिकालीन इतिहास कुछ रह ही न जायगा। बड़े-बड़े इतिहासकारों ने भारत के बारे में लिखा है, वह बिहार के इतिहास से ही प्राय: प्रारम्भ होता है।

भारत में छ: दर्शनशास्त्र प्रसिद्ध हैं। उनमें से वेदान्त का अप्रतिम स्थान है। वेदान्त भारत की अपनी मौलिक विद्या है और इस दिशा में बिहार ने ऐसी अनेक विभूतियों को जन्म दिया जिन्होंने वेदान्त की युगानुरूप व्याख्या करके, उसे जीवन-व्यवहार में लाने योग्य बनाया।

भारतीय दर्शन के इतिहास में बिहार का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह निर्विवाद है कि वैदिक काल से आधुनिक युग तक सदैव बिहार भारत के दार्शनिक ज्ञान-भण्डार को समृद्ध बनाने में संलग्न रहा है। भारतीय दार्शनिकों ने अपनी विलक्षण मौलिकता, अभिनव आलोक एवं जीवन की आधारभूत समस्याओं के संबंध में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि के सहारे, भारतीय विचारधारा में क्रांतिकारी उथल-पुथल मचाकर, उन्होंने भारतीय जीवन के स्वरूप एवं आदर्श के निरूपण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

राजर्षि जनक-

बिहार के अन्तर्गत प्राचीन मिथिलानगरी के दार्शनिकों में अग्रगण्य विदेहराज राजर्षि जनक का स्थान अत्युच्च है। वस्तुत: सुविख्यात पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटों द्वारा प्रयुक्त 'दार्शनिकों के सम्राट्' पद का प्रयोग राजा जनक के लिए करना बड़ा ही उपयुक्त प्रतीत होता है। वे अत्युच्च कोटि के ब्रह्मज्ञानी दार्शनिक थे। अनेकों दार्शनिक तथा सन्त-महात्मा सदैव उनके समीप ज्ञानसिद्धि एवं आत्मज्ञान प्राप्ति के निमित्त आया करते थे। वैदिक साहित्य में इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। वे स्वयं प्रकाण्ड विद्वान् और सिद्ध सन्त दार्शनिक तो थे ही, साथ ही अध्यात्मविद्या के जहाज भी थे। मानवमात्र को छोड़िये, भगवान् कृष्ण ने राजा जनक को भगवद्गीता में महान् दार्शनिक माना है।

महर्षि याज्ञवल्क्य-

ऋषि याज्ञवल्क्य मिथिला नरेश राजा जनक के आध्यात्मिक गुरु तथा उनकी राजसभा के सम्मानित प्रधान ऋषि थे। वे अपने युग के सर्वोच्च द्रष्टा माने जाते थे। याज्ञवल्क्य की धर्मपत्नी मैत्रेयी भी बहुत बड़ी विदुषी थी। अपने पति के साथ दार्शनिक एवं धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ करती थी, उनकी चर्चा हमें अनेक स्थलों पर मिलती है। उपनिषदों में जनक तथा अनेक दार्शनिकों के साथ याज्ञवल्क्य के विचार-विमर्श का उल्लेख मिलता है।

आचार्य गौतम मुनि-

न्यायदर्शन के जनक महान् दार्शनिक गौतम मुनि भी बिहार के ही थे। वे दरभंगा रियासत के ब्रह्मपुर नाम ग्राम के निवासी थे। उन्होंने न्यायसूत्र की रचना की है। यही ग्रंथ तर्कशास्त्र का मूलाधार है।

प्रकाण्ड पंडित कुमारिल भट्ट-

लोकविख्यात है कि धर्मरक्षार्थ जीवन-होम करने वाले दार्शनिक विद्वान् श्री कुमारिल भट्ट वैदिक धर्म के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने पूरे पाँच वर्ष तक तक्षशिला विश्वविद्यालय में रहकर बौद्धधर्म का क्रमबद्ध तथा विशुद्ध गहन अध्ययन किया। कालान्तर में उन्होंने बौद्धधर्म के खण्डन तथा वैदिक धर्म के प्रचार में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। जन-जन तक वेदों का दिव्य सन्देश पहुँचाया।

उन्होंने अपनी झूठी प्रतिज्ञा करने के क्षोभ से त्रस्त होकर या अपने गुरु के प्रति विश्वासघात करने के प्रायश्चित्त हेतु अपने जीवन को अग्नि में जल जाना चाहिए और वह अग्नि भी धान के छिलकों की, जो लौ उठाकर नहीं जलती केवल सुलगती रहती है। इस प्रायश्चित्त के हृदयस्पर्शी दर्दनाक दृश्य को देखने देश के अनेक विद्वान् आए थे। उन्हीं दिनों अद्वैत वेदान्त के प्रतिपादक संन्यासी आद्य शंकराचार्य भी उनके पास आये थे। उन्होंने ने भी उनसे ऐसा भयानक कार्य करने के लिए मना किया था पर वे नहीं माने।

आदिगुरु शंकराचार्य यद्यपि उनके साथ शास्त्रार्थ करने आये थे पर उनकी ऐसी दशा देखकर वे क्या करते। किन्तु कुमारिल भट्ट ने उनसे कहा कि- अगर मैं नहीं तो आप बिहार में जाइये, जहां मेरा शिष्य मण्डन मिश्र रहता है, जो मुझ से भी अधिक विद्वान् है। वह आप के कार्य (शास्त्रार्थ) में सहयोग करेगा। वास्तव में मण्डन मिश्र उस युग का भारत प्रसिद्ध विद्वान् तथा पण्डित था। मण्डन मिश्र और उनकी परम विदुषी धर्मपत्नी भारती से आदि शंकराचार्य का शास्त्रार्थ सर्वविदित हैं।

यहाँ विशेषरूप से उल्लेखनीय तथ्य है कि महापंडित मण्डन मिश्र प्राचीन मिथिला के सर्वाधिक बड़े दार्शनिक तथा मीमांसादर्शन और न्यायशास्त्र के अद्वितीय पण्डित थे। जब शंकराचार्य शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से मण्डन मिश्र से मिलने के लिए उनके ग्राम पहुंचे तो उन्होंने कुएँ (इनार) से पानी खींचती हुई ग्रामीन नारी से पूछा कि मण्डन मिश्र का घर (मकान) किधर है। उत्तर में, उस नारी (जो पनहारिनथीं) ने कहा

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं
शुकांगना यत्र विचारयन्ति।
शिष्यापशिष्यैरुपगीयमान-
मवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम।।

ऐसा कहा जाता है कि आदि शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के बीच प्रसिद्ध शास्त्रार्थ सिंहेश्वरस्थान (वर्तमान मधेपुरा जिला मुख्यालय) में हुआ था। शास्त्रार्थ के परिणाम स्वरूप मण्डन मिश्र ने अपने को पराजित माना और वे शंकर अनुयायी होकर कालान्तर में शुरेश्वराचार्य के नाम से विख्यात हुए।

वाचस्पति मिश्र-

पं. वाचस्पति मिश्र दरभंगा निवासी थे। उनकी प्रतिभा बहमुखी थी। भारतीय विचार-पद्धति सम्बन्धी उनका ज्ञान पूर्ण था। उन्होंने अनेक भाष्यों का भी प्रणयन किया था। उन्होंने मण्डन मिश्र द्वारा प्रणीत 'ब्रह्मसिद्धि' नामक दर्शन ग्रंथ की 'ब्रह्मसूत्र समीक्षा' नामक टीका भी लिखी थी।

आचार्य उदयन-

उदयन ने वाचस्पति मिश्र लिखित 'न्याय वार्तिक तात्पर्य टीका' का भाष्य लिखा था। उनकी 'कुसुमाञ्जलि' नामक रचना भी प्रसिद्ध है। इनका जीवन-वृत्त अज्ञात ही है।

गंगेश-

परवर्ती नैयायिकों में गंगेश का नाम प्रमुख है। उनका घर दरभंगा जिले के मँगरौनी ग्राम में था। उनकी 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक पुस्तक आधुनिक न्यायशास्त्र की आधारशिला मानी जाती है।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय दर्शन के विकास में बिहार का 'जैन धर्म दर्शन' और 'बौद्ध धर्म दर्शन' का भी योगदान उल्लेखनीय रहा है।

जैनधर्म के २८वें तीर्थंकर एवं जैनधर्म के वास्तविक संस्थापक के रूप में वर्द्धमान महावीर स्वामी जाने जाते हैं।

जैनियों के २४वें तीर्थकर बर्द्धमान महावीर एवं बौद्धधर्म के जन्मदाता गौतमबुद्ध लगभग समकालीन थे। बिम्बसार के राज्यकाल में दोनों ने अपने-अपने दर्शन एवं मत का प्रचार राजगृह तथा इसके आस-पास में रहकर देश-विदेशों में किया। अत: जैन और बौद्ध दोनों ही इस नगर एवं क्षेत्र को अतिपवित्र और पूज्य तीर्थ मानते हैं।

भारतवर्ष के बिहार राज्य में राजगीर एक प्राचीनतम स्थान है। प्रागैतिहासिक पाषाणयुग से लेकर ऐतिहासिक काल में भी इसे सदियों तक मगध जनपद की राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने उत्कर्ष और उत्थान के गौरवमय दिन इसने लगातार सहस्रों वर्षों तक देखे हैं।

बस इसी पुनीत धरती की गोद से बौद्ध धर्मदर्शन का प्रचार भूमण्डल के भिन्न-भिन्न सुदूरवर्ती भागों में किया गया। जापान, चीन, श्रीलंका में भिक्षु जाकर धर्म का प्रचार करते रहते थे। नालन्दा का नामी विश्वविद्यालय बौद्ध धर्म-दर्शन के अध्ययन का सर्वश्रेष्ठ केन्द्र अब भी मौजूद है।

उल्लेखनीय है कि जैनधर्म भारत का एक अत्यन्त प्राचीन एवं जगत्प्रसिद्ध धर्म है। इस धर्म के केवल एक ही सिद्धान्त का पालन करने में कोई सारा जीवन बिता दे तो उसका मानव-जन्म सफल हो सकता है।

भगवान् श्री महावीर स्वामी अपने अनुपम त्याग और तप के बल से प्रात:स्मरणीय वन्दनीय अवतारी पुरुष हो गये। इतिहास उनके दिव्य व्यक्तित्व का साक्षी है। वे बिहार की भूमि को अपने पदार्पण से कृतकृत्य कर गये। उनकी कठोर साधनाओं की स्मृति ही चित्त को विकार-शून्य कर देती है। उनका परम पावन

चरित्र मनोमल धोनेवाला एवं अखण्ड प्रवाह वाला है। जिसमें मानव-जाति अनन्त काल तक अपने कल्मष-कलुष का प्रक्षालन करती रहेगी। वे वास्तव में महावीर थे। विश्व विजयी सम्राट् भी मानसिक विकारों और वासनाओं के महायुद्ध में ध्वस्त-परास्त हो भूलुण्ठित हो जाते हैं। केवल विजेता ही नहीं, उन्होंने जितेन्द्रियता का मार्ग प्रशस्त कर संसारियों के लिए इन्द्रिय-दमन एवं विकार-शमन का घंटापथ तैयार कर दिया।

जैनधर्म में दिगम्बरत्व की बड़ी महिमा है। हिन्दूओं के सबसे बड़े देवता महादेव जी का नाम ही 'दिगम्बर' है। वे योगिराज हैं, अकाम है।

'अहिंसा परमो धर्मः' जैन सम्प्रदाय का यह सिद्धान्त बड़ा ही पवित्र और कल्याणकारी है। 'अहिंसा' बहुत व्यापक अर्थ व्यंजित करने वाला शब्द है। प्रायः ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि कर्मणा तो अहिंसा-धर्म आचरित होता है, पर मनसा वाचा नहीं हो पाता।

तपोधन महावीर स्वामी के जीवन से हमें यह सन्देश मिलता है कि सतत साधना की शक्ति से मन को निःसंग और अनासक्त करना मनुष्य का सबसे पहला ध्येय होना चाहिए।

अतएव, महावीर स्वामी ने अपने आचरण द्वारा जिस अहिंसा को समझाया उससे उनका परम पावन चरित्र ही मौन उपदेश बन गया।

(क्रमशः)

रामतीर्थकुंज, ग्राम+पो० रांकोडीह, वाया-कोसी कालेज,
खगड़िया, जि० खगड़िया (बिहार) 851205

(बाल कविता) जल की कीमत

—श्री महेन्द्र सिंह शेखावत 'उत्साही'

जल से जग है जल जीवन है,
जल बिन क्या है! जल तन-मन है।
जल से बनता जग है सारा,
जल जीवन का इक है चारा।

जल जड में है जल चर में है,
जल की कीमत जल सब में है।
जल बिन जीवन नहीं रहेगा,
पीड़ा सारा जगत् सहेगा।

-७६-ए, कैलाश नगर, गली नं. १६, झोटवाडा, जयपुर-३०२०१२

जैसा कर्म वैसा फल

–डॉ. शैलजा

मनुष्य जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मन से, वाणी से एवं शरीर से कर्म करता रहता है। कर्म का फल तीन तरह का होता है– अच्छा, बुरा और मिला–जुला। जिस परिस्थिति को हम चाहते हैं वह अच्छा कर्म फल है, जिसको हम नहीं चाहते वह बुरा कर्मफल है और जिसमें कुछ अच्छा और कुछ बुरा दोनों भाग हैं, वह मिला–जुला कर्मफल है। फल की इच्छा रखने वाले को समय–समय पर तीनों ही फल मिलते हैं, कर्मफल का त्याग करने वालों को नहीं। हम जितने ही कर्म करते हैं, वे सब प्रकृति के द्वारा अर्थात् प्रकृति के कार्य–शरीर, इन्द्रियां, मन और बुद्धि के द्वारा ही होते हैं तथा फलस्वरूप परिस्थिति भी प्रकृति के द्वारा ही बनती है। इसलिए कर्मों का और उनके फलों का संबंध केवल प्रकृति के साथ है। स्वयं से अर्थात् आत्मा के चेतन स्वरूप से इनका संबंध नहीं है। इसलिए जब हम उनसे संबंध तोड़ लेते हैं तो फिर हम भोगी नहीं होते अपितु त्यागी बन जाते हैं।

संत–महात्मा कहते हैं कि त्यागी अपने लिए कुछ नहीं करते। उनको यह विवेक सदा बना रहता है कि अपना तो सत्स्वरूप है, उसके लिए किसी भी क्रिया और वस्तु की आवश्यकता नहीं है। वह सब के हित में ही अपना हित मानता है तब वह स्वत: '**सर्वभूतहिते रता:**' हो जाता है। फिर उसके इस स्थूल शरीर से होने वाली क्रियाएँ, सूक्ष्म शरीर से होने वाला परहित चिंतन और कारण शरीर से होने वाली स्थिरता–तीनों ही संसार के प्राणियों के हित के लिए होती हैं। कर्मयोगी निष्काम भाव से कर्म करता हुआ फल के साथ संबंध नहीं रखता, वह ममता और अहंकार रहित हो जाता है। (गीता २/७१)

कर्म तीन प्रकार के होते हैं– क्रियामाण, संचित और प्रारब्ध कर्म। अभी वर्तमान में हमारे द्वारा जो कर्म किए जाते हैं, वे क्रियमाण कर्म हैं। वर्तमान से पहले इसी जन्म में किए हुए अथवा पहले के अनेक जन्मों में किए हुए जो कर्म हैं, वे संचित कर्म हैं और संचित कर्मों में से जो कर्म फल देने के लिए हमारे सामने हैं, वे प्रारब्ध कर्म हैं। क्रियमाण कर्म दो तरह के हैं, शास्त्रों में कहे हुए के अनुसार जो कर्म हम करते हैं, वे शुभ कर्म हैं और शास्त्रों के विपरीत अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, आसक्ति को लेकर जो कर्म किए जाते हैं, वे अशुभ कर्म हैं। मनुष्य शुभ और अशुभ कर्मों के करने का निर्णय लेने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। लेकिन जब उसे शास्त्रों के विपरीत कार्य करने पर एक बुरी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है, तब वह इसके लिए किसी और शक्ति पर दोषारोपण करने लग जाता है और भूल जाता है कि इस परिस्थिति के लिए भी वह स्वयं ही उत्तरदायी है और कोई नहीं। गीता में भगवान् ने सम्पूर्ण कार्यों की सफलता के लिए पाँच कारण बताए हैं। उसमें अधिष्ठान, कर्ता, अनेक प्रकार के

करण अर्थात् कारक, विविध प्रकार की अलग-अलग चेष्टाएँ और पाँचवा कारण दैव यानी प्रारब्ध है-**अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्।**
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।।
(१८/१४)

मनुष्य अर्थात् कर्त्ता जब कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा मन, बुद्धि और अहंकार अर्थात् करण द्वारा अपने शरीर अर्थात् अधिष्ठान से अनेक विधियों द्वारा जो कर्म करता है, तब उस कर्म की सफलता के लिए मनुष्य के अथक प्रयासों के साथ ही भगवान् ने पांचवा कारण दैव यानी प्रारब्ध बताया है। जैसा कि पहले बताया गया है कि हमने जैसे शुभ और अशुभ कर्म किए हैं, उनका संस्कार हमारे अंत:करण में पड़ता है और हमारे ही संचित कर्म प्रारब्धरूप से हमारे सामने फल रूप में आ जाते हैं। अनुकूल परिस्थिति आने पर इसका सारा श्रेय हम अपने आप को देते हैं। अत: कभी-कभी बहुत मेहनत करने पर भी, जब प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित हो जाती है, तब हम इसके लिए किसी अन्य को दोषी ठहरा कर अपना पल्ला झाड़ लेते हैं, जबकि इस सबके लिए हमारे वर्तमान के या भूतकाल के किए हुए कर्म ही उत्तरदायी होते हैं। इसीलिए संत और शास्त्र दोनों हमें यही परामर्श देते हैं कि अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति में हमें समानभाव अपनाना चाहिए और कर्त्ताभाव से ऊपर उठकर प्रत्येक परिस्थिति में ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए।

अत: हमें प्रत्येक पल बड़ी ही सावधानी से अपने सभी नियत कार्यों को बिना किसी कर्त्तापन से और बिना किसी फल की इच्छा से, पूर्ण निष्काम भाव से, ममता और आसक्ति से रहित होकर केवल संसार और प्राणीमात्र के हित को ध्यान में रखते हुए एवं ईश्वर द्वारा बनाए गए उसके संसार की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने में अपना कुछ योगदान देते हुए जीवनयापन करना है। कार्य की सफलता और विफलता में समानभाव रखते हुए प्रतिकूल और अनुकूल परिस्थिति दोनों ही हमारे कर्मफल रूप में ईश्वर की देन है और दोनों ही हमारे हित में हैं- इस तरह से समझते हुए इस संसारयात्रा को पूरा करते हुए इससे मुक्त होने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। गीता में भगवान् ने कहा है कि जो पुरुष सम्पूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति के द्वारा ही किए जाते हुए देखता है और आत्मा को अकर्ता देखता है, वही यथार्थ देखता है-

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति।।
(१३/२९)

अत: ईश्वर सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहते हुए अपनी माया से हमारे ही किए हुए कर्मों के अनुसार हमें इस संसार में भ्रमण करवाते रहते हैं। कर्म की सफलता और असफलता के लिए अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिति के लिए हम स्वयं ही उत्तरदायी होते हैं, इसके लिए किसी और को दोष देने के स्थान पर हम केवल आत्मनिरीक्षण करें और प्रत्येक कर्म को करने से पहले यह भलीभाँति सोच लें कि जैसा बीज हम धरती में डालेंगे, उसी तरह का वृक्ष उत्पन्न होगा।

अत: हम जैसा कर्म करेंगे और हमने जैसे कर्म पूर्व में किए थे, उसी तरह का परिणाम हमें मिलेगा। महापुरुषों ने कहा भी है-

जैसा बोया पेड़, वैसा ही फल होय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहां ते होय।।

संत तुलसीदास ने भी इसी ओर ध्यान दिलाते हुए कहा कि-

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा।।

जब कर्मानुसार फल का विधान है तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ सकता है कि ऐसा क्यों है कि कुछ लोग बुरा कर्म करते हुए भी मौज-मस्ती का जीवनयापन कर रहे हैं और अच्छा कर्म करने वाले कष्ट और अभाव का जीवन जी रहे हैं। ज्ञानीजन इस विसंगति का समाधान करते हुए समझाते हैं कि जब तक जीव का पूर्व जन्म का अर्जित पुण्य क्षीण नहीं हो जाता तब तक उसे कर्म का फल मिलता। इस प्रकार जब तक पाप कर्म का फल भोग नहीं लिया जाता तब तक शुभ कर्मों का फल उदित नहीं होता।

वेद, शास्त्र का कथन है कि जीवात्मा अपने कर्मफल के रूप में ही सुख-दु:ख भोगता है। कोई दूसरा व्यक्ति न हमें सुख दे सकता है और न ही दु:ख दे सकता है। यद्यपि हम कई बार अपने दु:ख-सुख का आरोप दूसरे व्यक्ति पर कर देते हैं लेकिन यह बात न तो सही है और न ही शास्त्र-सम्मत। रामायण का प्रसंग है कि- निषाधराज ने जब राम एवं जानकी के वनवास दु:ख को अकारण बताते हुए अफसोस जताया, तब लक्ष्मण ने इस बात को नकारते हुए कहा था कि-

काहु न कोऊ सुख दु:ख कर दाता।
निज कृत करम भोगु सब भ्राता।।

-४/११४ एस.एफ.एस., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०।
मो. 93519-81595

भीतवत् संविधातव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवान्।।

महा.आदि.प. १३९.८२

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि जब तक भय की केवल संभावना हो, अर्थात् अनिष्ट आने की संभावना हो, तब तक भय का अनुभव करते हुए उस भय को टालने की चेष्टा करनी चाहिए। किन्तु प्रयत्न करने पर भी यदि भय शिर पर आकर खड़ा हो ही जाय तो तब नीडर होकर उसका डटकर मुकाबला करे।

हिन्दी काव्य में सहजोबाई का योगदान

–डॉ. गीता शर्मा

मध्यकाल को भारतीय साहित्य इतिहास में स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। इस काल में साहित्य, कला और दर्शन उच्च शिखर पर था। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इसे पुनर्जागरण युग का नाम भी दिया है। मध्यकाल में सन्त महात्माओं ने अपनी वाणी द्वारा लोगों को चेतना प्रदान की उनकी काव्य रचनाओं का मुख्य उद्देश्य समाज में प्रचलित कुरीतियों तथा ब्राह्याडम्बरों को दूर करके स्वस्थ आदर्शों का निर्माण करना था। 'इन कवियों का लक्ष्य था मानव को अन्धकार से निकालकर प्रकाश की ओर अग्रसर करना, विश्वकल्याण हेतु विश्वबन्धुत्त्व की भावना का प्रसार करना। यह सन्त महात्मा केवल व्यक्ति ही नहीं थे बल्कि एक संस्था के रूप में थे। इन कवियों ने जाति, धर्म, नस्ल, रंग और भेद के ऊपर उठकर मध्यकालीन समाज के समक्ष ईश्वर, धर्म, नैतिकता, त्याग, सेवा, प्रेम, भ्रातृभाव और मानवता की अटूट सांझेदारी को प्रमुखता देकर लोगों को नेक मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है।[१]'

निर्गुण काव्य-परम्परा के यह कवि दूसरों को मिट्टी बताने से पूर्व स्वयं कंचन बने, इनकी यही महानता ही इनके साहित्य में अमर प्राणों की संचारशक्ति की स्रोतवाहिनी है।

भक्तिकाल के अन्तर्गत निर्गुण काव्य-परम्परा में जिन सन्तों ने छोटे-बड़े सम्प्रदायों का प्रवर्त्तन किया उसी परम्परा में चरणदासी सम्प्रदाय का नाम आता है। चरणदास जी के बावन शिष्य थे इन्हीं में सहजोबाई जी का नाम प्रमुख है। सहजोबाई मेवात की रहने वाली थी और उनका जन्म सम्वत् १८०० वि. में माना जाता है। सहजोबाई अपनी वाणी में अपने माता-पिता और कुल के बारे में लिखती है:-

हरिप्रसाद की सुता नाम है सहजोबाई।
दूसर कुल में जन्म सदा गुरु चरण सहाई।।

पिता जी श्री हरिप्रसाद जी थे और वह दूसर (भागर्व) कुल में पैदा हुई थी। सहजोबाई की माता का नाम अनूपी देवी था तथा सन्त चरणदास जी आपके मामा जी के सुपुत्र थे।

'सहजोबाई ने अपने काव्य द्वारा भारतीय सन्तधारा में एक नवीन दीप जलाकर जो ज्योति ज्योतित की उससे मानवता को तद्युगीन सामाजिक पीड़ाओं में शान्ति का एक नवीन मार्ग दिया। सहजोबाई द्वारा प्रदत्त इस प्रकाश ने मृग-मानवता को मात्र एक नवीन जीवन प्रदान किया। उन्होंने सन्त साधना को बड़े उल्लासपूर्ण भाव से एक ऐसी गति प्रदान की जो कबीर आदि सन्तों से चली आ रही थी, जिससे निर्गुण विचारधारा मानव कल्याण पथ पर और आगे बढ़ी।[२]'

प्राचीन काल से सन्त-महात्माओं ने अपनी अनमोल वाणियों द्वारा हमारे अन्दर नवजीवन का संचार किया है और अनन्तकाल तक करते रहेंगे गुरु ही मनुष्य को अन्धकार से निकालकर प्रकाश

१. हरमहेन्द्र सिंह बेदी, कालजयी कबीर, पृ. १

२. सहजोबाई, सहजोबाई की वानी, पृ.१

की ओर ले जाता है जिससे मनुष्य में नवजीवन का संचार होता है। सहजोबाई की अपने गुरु के प्रति अगाध निष्ठा, श्रद्धा और प्रेम था वह कहती है–

चरणदास गुरुदेव, भेव मोहि अगम बतायौ।
जोग जुगत सूँदुलभ, सुलभ करि दृष्टि दिखायौ।।

सहजोबाई कहती है परमात्मा का वास ऐसे दुर्गम स्थल पर भी है जहां चीटी भी नहीं चढ़ सकती तथा सरसों जैसी छोटी वस्तु भी नहीं ठहर सकती ऐसे दुर्लभ स्थान पर रहने वाले प्रिय से मिलन करने में सतगुरु ही सक्षम है क्योंकि गुरु ही हमारा पथ प्रशस्त करता है:-

गुरु बिन मारग न चलै, गुरु बिन लहै न ज्ञान।
गुरु बिन सहजो धुन्ध है, गुरु बिन पूरी हान।।

गुरु के बिना जीवन अन्धकार है तथा सब प्रकार की हानि ही हानि है क्योंकि सतगुरु वह शक्ति है जो व्यक्ति के जीवन को परिवर्तित कर देने की सामर्थ्य रखता है।

सहजोबाई तन की कठोर साधना की अपेक्षा 'नाम को श्रेयस्कर' मानती है। धुआंधार वर्षा में, कंपा देने वाली शीत में तथा पिघला देने वाली ग्रीष्म में, पर्वत पर तपस्या करने वाले साधक की साधना भी नाम के स्मरण के समक्ष फीकी हो जाती है।जैसे:-

सहजो भज हरि ना कूँ, तजो जगत सूँ नेह।
अपना तो कोई नहीं, अपनी सगी ना देह।।

सहजोबाई के अनुसार संसार से स्नेह छोड़कर हरिभक्ति में 'रत' होना चाहिए क्योंकि इस संसार में मनुष्य का कोई भी अपना नहीं यहां तक कि स्वयं उसका शरीर भी अपना नहीं है। सहजो कहती है:-

झूठा नाता जगत का, झूठा है घरँ बास।
यह तन झूठा देखकर, सहजो भई उदास।।[3]

विक्रमी सम्वत् १८०० में फागुन मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन सहजोबाई ने अपनी वाणी की रचना 'सहज प्रकाश' नामक ग्रन्थ में की है। जैसा उन्होंने स्वयं लिखा भी है–

फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार,
सेबत अठारे सै हेतु, सहजो किया विचार।
गुरु अस्तुति के कारन कूँ, बढ़यों अधिक हुलास,
होते-होते हो गई, पोथी सहज प्रकाश।।[4]

अत: सहजोबाई को गद्दी संत चरणदास जी के हुकुम से उनके जीवनकाल में ही स्थापित हो गई थी। परन्तु सन्त चरणदास जी के विक्रमी सम्वत् १८३८ में सांसारिक विदा लेने के बाद सहजोबाई २४ साल तक सतगुरु के उपदेश का प्रचार करती रही और अन्तत: विक्रमी १८६२ अर्थात् २४ जनवरी १८०५ ई. में सहजोबाई का पंच भौतिक शरीर इस मिट्टी में विलीन हो गया। सहजोबाई की गद्दी आज भी चल रही है तथा श्रद्धालु आज भी उनकी याद में प्रेम और श्रद्धा से वहां पर बसन्त का उत्सव मनाते हैं।

–४, गोविन्द विहार, आर.बी. दुनीचन्द रोड़, अमृतसर।

३. सहजोबाई, सहजोबाई की वानी, पृ. १९

४. वही, पृ. ६३

शोध (रिसर्च) फिटकरी पर (संपूर्ण एण्टीबायोटिक्स)

–एडवो० दयानन्द स्वरूप

१.नाई अपनी दुकान पर दाढ़ी बनाकर फिटकरी पानी में भिगोकर चेहरे पर एण्टीसैपटिक तत्त्व फिटकरी में होने के ही कारण मलते हैं ताकि त्वचा उस्तरे से कहीं कट जाए, छिल जाए तो संक्रमण ना होगा। हर प्रकार की खुजली को फिटकरी साफ करता है।

२. फिटकरी पीसकर खाने से शरीर में त्वचाई संक्रमण न हों एण्टीसैपटिक प्रभाव से मुटापा नहीं बढता, शरीर में फिटकरी एक ऐसी सफल चिकित्सा है जो हर त्वचाई एलर्जी को नष्ट करती है। आफटर शेव लोशनों में फिटकरी का प्रयोग होता है। फिटकरी में प्रकृति की ऐसी देन है कि डाकटर, वैद्य, हकीम, जराह इसका प्रयोग करके उनकी अपनी रोजी रोटी के लिए आय का साधन है।

३. स्नान करने के पानी में फिटकरी घोल कर स्नान करने से किसी भी प्रकार की एलर्जी संक्रमण नहीं होता और खुजली भी त्वचा पर नहीं होती। चेहरे की त्वचा ढीली न पड़े, झुर्रीयाँ न पड़े, पीलापन न होगा त्वचा को टाइट रखने के लिए तरोताजा बनाने के लिए फिटकरी जल में घोलकर मलें। यह हर प्रकार के वैक्टीरिया को नष्ट करती है। ये सार्थक सटीक प्रतीक है।

४. इससे दन्तरोगों का नाश होता है फिटकरी लाल बारीक पीसकर सरसों के तेल में मिलाकर दाँतों और मसूढ़ों की प्रतिदिन मालिश करने से दाँत स्वस्थ चमकीले संक्रमणों से सुरक्षित रहते हैं। त्वचा पर जिह्वा पर सफेद तह, दाँतों पर पीलापन नहीं जम पाता है। फिटकरी को चोट पर घाव पर बुरकने से शीघ्र आराम आता है। त्वचा को जवान रखती है।

५. दमा खांसी में फिटकरी सार्थक लाभ देती है। फिटकरी लाल पीसकर शहद कालानमक में मिलाकर रख लें और सवेर-शाम दिन में चाटा करें। स्थाई लाभ होगा। फिटकरी की यह तासीर है उसका क्रिस्टर पदार्थ त्वचा व शरीर की नसों की गन्दगी साफ करके सक्रिय करता है और शरीर की रक्तवाहिनीयों, यकृत आतें, गुर्दे की गन्दगी से मुक्त रहकर सार्थक सशक्त बनाता है।

फिटकरी की शक्तियों से रंग गोरा निखारती हैं। गले में खराशों में, खाँसी से धसका, मसूढ़ों से दर्द रक्त आना, टीस होना, शहद काला नमक फिटकरी में मिलाकर मालिस करे रूई की फुरैरी से गले में लगावें मुँह के छालों पर लगावे हर प्रकार की खराश दर्द संक्रमण १-२ दिन में ही दूर होगा। मुँह की त्वचा की चमक कील मुँहासे छाईयां, झुर्रीयों पर मुँह धोकर फिटकरी का टूकड़ा हल्के-२ त्वचा पर मला करे और छोड़ दें। फिटकरी एक सार्थक माऊथवाश भी है सूजन दूर करती है। लाख दुखों कष्टों की सफल दवा है क्यों न अजमायें। घरेलु डाक्टर है फिटकरी।

–डिप्टी गंज, स्टोन स्ट्रीट, बुलन्दशहर (उ. प्र.) २०३००१।

वैदिक वाङ्मय में शुभाशुभ कर्मप्रवर्त्तक-मन का स्वरूप

-डॉ. अनुभा जैन

भारतीय मनोविज्ञान समग्र मन, चित्त, उनके साधनों, मस्तिष्क नाड़ियों, कुण्डलिनी-चक्र आदि सहित मानव की अनुभूतियों तथा व्यवहारों का चेतन सापेक्ष गत्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने, अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध करने, कैवल्य प्राप्ति हेतु अष्टांग तथा चित्त को विकसित करके अद्भुत शक्तियों तथा विवेक प्राप्त करने का क्रियात्मक विज्ञान है। यही कारण है कि वैदिक ऋषि का मनोवैज्ञानिक चिन्तन मन की भद्रता, शिवता एवं संकल्पता को लक्ष्य करके उसकी शक्तियों के संवर्धन के उद्देश्य से मानसिक प्रक्रियाओं का केन्द्र प्रतीत होता है।

आचार्य गौतम तथा वात्स्यायन आदि दार्शनिक आचार्यों ने ५ ज्ञानेन्द्रियों को बाह्यकरण तथा मन को अन्त: करण के रूप में स्वीकार किया है। न्यायसूत्र में मन का परिमाण अणु माना गया है; क्योंकि यह मन आत्मसंयोगी अर्थात् आत्मा से संयुक्त रहा है और वह अन्तरिन्द्रिय है। यह मन सुखादि आत्म-गुणों की उपलब्धि का साधन होता है तथा वह नित्य है।[१] मन अन्तरिन्द्रिय है,[२] यह बाह्य पदार्थों का ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से प्राप्त करता है तथा सुख-दु:खादि आन्तरिक अनुभवों का ज्ञान प्राप्त कराने में सहायक होता है।[३] मन से संयुक्त होकर ही सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण करती हैं और मन उसके ग्रहण करने में केवल निमित्त कारण ही माना जाता है। मन एक रूपरहित द्रव्य है। मन का ग्रहण प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं अपितु मात्र अनुमान प्रमाण से ही होता है।[४] नैयायिकों के अनुसार प्रत्येक शरीर में मन एक ही है। मन की एकत्व सिद्धि का प्रमाण देते हुए न्यायाचार्यों का मत है कि ज्ञान के युगपत् न होने से मन प्रति शरीर में एक सिद्ध होता है। हमें एक समय में एक ही विषय का ज्ञान होता है। उस समय किसी अन्य विषय का ज्ञान नहीं होता क्योंकि मन का संयोग जिस इन्द्रिय से होता है वही इन्द्रिय उस समय अपने विषय का ज्ञान कराने में समर्थ होती है। मन एक है। अत: एक ही इन्द्रिय से संयुक्त रहने में समर्थ है। न्यायाचार्यों ने मन को अणु परिमाण वाला कहा है।[५] मन अणु होने से इतनी तीव्र गति का है कि उसे शरीर के विभिन्न भागों में जाने के लिए कुछ भी देर नहीं लगती। इस रीति से मन सभी इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान कराता हुआ सुखादि का ज्ञान करता है।[६] वात्स्यायन के अनुसार स्मृति आदि ज्ञान बाह्य इन्द्रियों से

१. तर्कभाषा, अर्थनिरूपणम् पृ. ३७६

२. तर्कभाषा, मनोनिरूपणम्, पृ. ५५९ अन्तरिन्द्रियं मन:।

३. तर्कभाषा, इन्द्रिय निरूपणम्, पृ. ३०० सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मन:।

४. द्र. तर्कभाषा, अर्थनिरूपणम् माधुरी टीका, पृ. ३७७-३७८

५. तर्कभाषा, इद्रियनिरूपणम्, पृ. ३००

६. न्याय, १.१.१६.

उत्पन्न नहीं होता और विभिन्न इन्द्रियों तथा उसके विषयों के रहते हुए भी एक-साथ सबका ज्ञान नहीं होता, इससे मन का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

वैशेषिक दर्शन में मन को एक नित्य द्रव्य माना गया है।[७] मन एक द्रव्य होने से ही इसमें गुणों की संख्या आठ कही गई है- संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, संस्कार।[८] इसी दर्शन के अनुसार विभुत्व के अभाव से मन अणु है[९] एवं किसी भी वस्तु के ज्ञान कराने में समस्त इन्द्रियों का सहायक है।[१०]

'सांख्यकारिका' के अनुसार षोडश गणों में पंचतन्मात्राओं, पंचज्ञानेन्द्रियों तथा पंचकर्मेन्द्रियों के अतिरिक्त १६वां तत्त्व मन ही है।[११]

योगदर्शन में चित्त, बुद्धि, मन, अन्तः-करण समानार्थक शब्द हैं। मन की चंचलता प्रसिद्ध है। सृष्टि के सम्पूर्ण कार्यों में मन की स्थिरता ही सफलता का कारण होती है। सृष्टि के सभी महान् पुरुषों की अद्भुत शक्तियों में उनके मन की एकाग्रता का रहस्य छिपा हुआ होता है।[१२]

दिव्य गुणों से युक्त मन तन्मात्राओं को उत्पन्न करता है। एक ही स्थान पर रहता हुआ इन्द्रियों के माध्यम से सम्पूर्ण चराचर जगत् में विचरण करता है।[१३] मन दर्शन, श्रवण, रसन, गन्ध तथा स्पर्श आदि इन्द्रियजन्य संस्कारों को विचारों में परिवर्तित करता है। उस समय सद्गुणों को ग्रहण करता है और कुवृत्तियों का नाश करता है।[१४] इन्द्रियों को संयमी करने वाला, कल्याण करने वाला, विकारों का नाश करने वाला यह मन बुद्धि के द्वारा उत्पन्न होता है।[१५] गीता में भी मन का चञ्चल तथा बड़ा सशक्त स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। गीता के अनुसार मन, वचन और शरीर से किये जाने वाले शुभ-अशुभ कर्म तदनुसार ही फल देने वाले होते हैं और उन्हीं कर्मों के अनुसार मनुष्य को उत्तम, अधम और मध्यम- तीन जन्म प्राप्त होते हैं।[१६]

उपनिषदों में भी मन को कई एक स्थानों पर ब्रह्म माना गया है।[१७] तैत्तिरीयोपरिषद् के अनुसार 'मन ब्रह्म है क्योंकि मन से ही सभी प्राणी उत्पन्न हुए हैं तथा मन से ही जीवित रहते हैं एवं मरणोन्मुख होने पर मन में ही लीन हो जाते हैं।[१८] ब्रह्म का यह महान् स्वरूप जो कि संकल्पात्मक है, ब्रह्मरूप से चेतन है और दृश्य रूप से जड़ है।[१९]

ब्राह्मण-ग्रन्थों में मन को इन्द्र अर्थात् आत्मबल कहा गया है।[२०] शतपथ ब्राह्मण में मन को समुद्र कहा गया है।[२१] मानव के भीतर मन की दृढ़ शक्ति उसे पाप से मुक्त करती है, उत्तम गति प्रदान करती है। मन की सात्त्विक शक्ति

७. वैशेषिक., १.१.५
८. तर्कभाषा, अर्थनिरूपणम्, पृ. ३७६
९. वैशेषिक. ७.१.२३
१०. द्र. पातञ्जलयोगप्रदीप, न्यायदर्शन, पृ. ७५
११. सांख्यकारिका, २७
१२. द्र. पातञ्जलयोगप्रदीप, चौथा प्रकरण, पृ. १४५
१३. अथर्ववेद, ९.४.९
१४. वही, ५.२०.६
१५. वही, ५.२०.७
१६. गीता, १२.३
१७. छान्दोग्योपनिषद्, ३.१८.१
१८. तैत्तिरीयोपनिषद्, ३.४
१९. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४.१.६
२०. गोपथ-ब्राह्मण, उत्तरार्द्ध, ४.११
२१. श.ब्रा. ७.५.२.५२., अथर्ववेद, १९.४२.३

ही उसे सत्य के मार्ग पर प्रशस्त करती है। इसी सात्त्विक बल से साधक ब्रह्मज्ञान द्वारा अनुसरण किए गए दीक्षा व तप से युक्त मार्ग का अनुसरण करता है।[२२] इन्द्रियों का दमन करने वाला, शरीर को वश में करने वाला मन यदि मानवाधीन हो जाए तो निश्चित रूप से अभ्युदय को प्राप्त किया जा सकता है।[२३]

मानव का मन उत्तम, मध्यम, अधम भेद से तीन प्रकार का तथा मन, वचन, क्रिया-भेद से तीन आश्रय वाला और दश लक्षणों से युक्त कर्म का प्रवर्त्तक है।[२४] यह जीव मन से जिस शुभ या अशुभ कर्म को करता है मन से उसके सुख-दुख को भोगता है।[२५]

वैदिक ग्रन्थों में स्पष्ट उपदेश है कि मन को स्थिर करके विकारों रूपी शत्रुओं को नष्ट किया जा सकता है।[२६] उत्तम भावना से युक्त मन से युक्त इन्द्रियाँ मनुष्य को कल्याणकारी ज्ञान से युक्त करती हैं।[२७] ऋषि कामना करता है कि मन सदैव कल्याणकारी विचारों से युक्त हो[२८] ताकि मानव सकारात्मक कार्यों में लीन रहे क्योंकि प्रसन्नचित्त मन की ही कामनाएँ पूर्ण होती हैं।[२९] मन की कल्पना ग्रहों के अन्तर्गत भी की गई है तथा वह काम रूप ग्रह से गृहीत है,[३०] क्योंकि प्राणी मन से ही कामनाओं की कामना करता है।[३१]

इन्हीं तथ्यों से प्रेरित होकर वैदिक ऋषि अपने कल्याण के लिए मन के विकारों को समाप्त करने हेतु अनेक मन्त्रों में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं क्योंकि मन के लिए दूर के लोक भी दूर नहीं हैं।[३२] मन दूरगामी भी है और समीपस्थ भी है।[३३] समाज में सभी लोगों का संकल्प, हृदय, मन एक समान हो जिसमें परस्पर मिल कर किया जाने वाला कार्य संगठित हो।[३४] जिससे सबका मनन करने का साधन, अन्तःकरण की प्रेरणा एवं चित्त-विचार जन्य ज्ञान एकविध हों[३५] ताकि समाज के सभी जन एक विचार से मिल कर रहें और सभी एक मत हों।[३६]

– गुरु नानक देव गर्ल्ज़ कालेज, यमुनानगर (हरियाणा)

२२. अथर्ववेद, १९.४३.६
२३. अथर्ववेद, १७.१.१
२४. मनुस्मृति, १२.४
२५. वही, १२.८
२६. ऋग्वेद, ५.३०.४
२७. वही, ५.४२.४
२८. वही, १०.२५.१
२९. वही, १०.२५.४
३०. बृहदारण्यकोपनिषद्, ५.६.१
३१. वही, ३.२.७
३२. ऋग्वेद, ३.३०.२
३३. ऋग्वेद, ३.५३.५
३४. ऋग्वेद, १०.१९१.४
३५. वही, १०.१९१.३
३६. वही, १०.१९१.२

महाकवि कालिदास कृत विक्रमोर्वशीय में अर्थप्रकृति-विवेचन

–श्री किशोर रॉय

अर्थप्रकृति दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थ और प्रकृति। अर्थ से अभिप्राय 'फल' तथा प्रकृति से अभिप्राय हेतु अर्थात् इतिवृत्त के फल के हेतु को अर्थप्रकृति कहते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त के मतानुसार अर्थप्रकृतियां कथावस्तु के फल के उपाय हैं।[१] दशरूपककार[२] तथा साहित्यदर्पणकार[३] के अनुसार अर्थप्रकृतियां प्रयोजनसिद्धि के फल की हेतु हैं। नाट्याचार्यों के अनुसार बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पाँच अर्थप्रकृतियां हैं।[४] विक्रमोर्वशीय में महाकवि कालिदास ने कथावस्तु के अनुरूप ही अर्थप्रकृतियों का यथोचित वर्णन किया है।

बीज-

इतिवृत्त की फलसिद्धि का प्रथम हेतु बीज है। जिसे रूपक एवं उपरूपक के आरम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेतिक किया जाता है तथा आगे चलकर अनेक रूपों में विश्रुत होता है। जिस प्रकार लोक में स्वल्प बीज फलरूप में परिणित होता है उसी प्रकार नाट्य-कथा का आरंभिक अंश भी लौकिक बीज की तरह इतिवृत्त की फलसिद्धि अर्थात् फलरूप में परिणत होता है। आचार्य भरतमुनि ने बीज-नामक अर्थप्रकृति का विवेचन अपने नाट्यशास्त्र में किया है।[५]

परवर्ती नाट्याचार्यों[६] ने भी बीज अर्थप्रकृति के विषय में आचार्य भरतमुनि के मत का ही अनुसरण किया है।

विक्रमोर्वशीय में राजा एवम् उर्वशी के अङ्गों से उत्पन्न प्रेम कथावस्तु का बीज है। प्रथमाङ्क में जब केशी राक्षस, उर्वशी को कुबेर की सेवा से लौटने पर हर लेता है, तब राजा पुरुरवा उर्वशी की रक्षोपरान्त हेमकूट पर्वत पर पहुँचकर मन में सोचता है कि रथ के उतरने से उत्पन्न हुए आघात से विशालनेत्रों वाली ने रोमराजी से युक्त मेरे शरीर को अपने अङ्गों से स्पर्श कर लिया है।[७] यहीं से राजा पुरुरवा का उर्वशी के प्रति तथा उर्वशी का राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है। अतः यहां बीज नामक अर्थप्रकृति है क्योंकि इन दोनों के अङ्ग-स्पर्श से उत्पन्न प्रेम से ही कथावस्तु का आरम्भ होता है।

---

१. ना.शा. भाग-३ पृ. १२

२. प्रयोजनसिद्धिहेतव; द.रू. १.१८. पादटिप्पणी

२. प्रयोजनसिद्धिहेतव सा.द. ६.६४. पादटिप्पणी

४. ना. शा. १९.२१; द.रू १.१८; भा.प्र.७.१५७; ना. ल.र., पृ. १५. र.सु, ३.९. प्र. रु. ३.६.७.८; सा.द. ६.६४; ना. च. पृ. ३१

५. ना. शा. १९.२२

६. द.रू, १.१७; ना. द. १.२९; भा.प्र. ७.१५२; ना. ल.र. पृ.१५; र. सु.३.११ प्र. रू. ३.६; सा.द. ६.६५; ना. च. पृ.१५

७. विक्रमोर्वशीय, १.१३

बिन्दु-

'बिन्दु' अर्थप्रकृति का दूसरा अङ्ग है। यह नाट्य में कथावस्तु के अवसान काल तक रहता है। आचार्य भरतमुनि ने बिन्दु का लक्षण करते हुए कहा कि जब मनुष्य कथावस्तु का अवान्तर घटना के समावेश से विच्छेद हो जाए तब कथावस्तु को आगे बढ़ाने में जो सहायक होता है तथा कथावस्तु की समाप्ति तक रहता है। वह बिन्दु कहलाता है।[८] यह बिन्दु उसी प्रकार नाट्य में फैला दिखाई पड़ता है जिस प्रकार पानी के ऊपर तेल की बूंद।[९]

विक्रमोर्वशीय के द्वितीय अंक में राजा पुरुरवा को को उर्वशी द्वारा लिखित पत्र रानी औशीनरी को प्राप्त होने से कथा में विच्छेद होता है। तदनन्तर तृतीयाङ्क में रानी औशीनरी 'प्रियानुप्रसादन' व्रत की पूजा अर्चना के लिए राजा को बुलाती है। तब राजा बिदूषक को अपनी दाहिनी भुजा के स्पन्दित होने के शुभ शकुन को बताता है। उसके पश्चात् रानी औशीनरी पुरुरवा से कहती है आज से पतिदेव के मिलन योग्य जो स्त्री होगी, मैं उसके साथ स्नेह का व्यवहार करूंगी।[१०] तब चित्रलेखा उर्वशी को कहती है रानी औशीनरी ने आज्ञा दे दी। अब तुम्हारे मिलन में कोई बाधा नहीं होगी।

अत: यहां 'बिन्दु' नामक अर्थप्रकृति है क्योंकि रानी औशीनरी के ऐसा कहने पर कथावस्तु में हुआ व्यवच्छेद समाप्त हो जाता है।

पताका-

नाट्याचार्यों के अनुसार प्रासङ्गिक इतिवृत्त के दो भेद हैं- पताका और प्रकरी। जो कथावस्तु प्रधान नायक की कार्यसिद्धि में सहायक बनती है तथा प्रधान का उपकारक होकर भी प्रधानवत् होती है, वह पताका प्रासंगिक वृत्त कहलाती है।[११]

आचार्य विश्वनाथ एवं रूपगोस्वामी के अनुसार जो प्रासङ्गिक कथा दूर तक व्याप्त हो उसे पताका कहते हैं।

अत: जो प्रासंगिक इतिवृत्त सानुबन्ध होता है तथा जो इतिवृत्त रूपक में दूर तक चलता है वह पताका कहलाता है तथा इसकी कथावस्तु मुख्य कथा की उपकारक होती है।

विक्रमोर्वशीय में उर्वशी गन्धमादन पर्वत में चले जाने पर लता रूप में परिवर्तित हो जाती है।[१२] तदनन्तर एक साधु के द्वारा राजा पुरुरवा को सङ्गमनीय मणि दी जाती है;[१३] जिसके स्पर्श करने से लतारूप में स्थित उर्वशी पुन: अपने रूप में आ जाती है। अत: यहां पर उर्वशी का लता में परिवर्तन तथा पुन: उर्वशी के रूप में आना पताका है।

प्रकरी-

आचार्य भरतमुनि ने प्रकरी अर्थप्रकृति के विषय में कहा कि जिसका फल किसी अन्य पात्र के लिए होता है परन्तु फिर भी उस अनुबन्ध विहीन प्रकरी को निर्दिष्ट करना चाहिए।[१४] अन्य

---

८. विक्रमोर्वशीय, पृ. १.१३
९. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत आलोचना पृ. १०३-१०४
१०. विक्रमोर्वशीय पृ. १५०
११. ना.शा. १९.२४
१२. विक्रमोर्वशीय, पृ. १७०
१३. वही,. ४.३७
१४. ना. शा. १९.२५

नाट्याचार्यों के मतानुसार एक प्रदेश तक चलने वाली कथावस्तु को प्रकरी कहते हैं।[१५]

अतः प्रकरी नामक अर्थप्रकृति की कथावस्तु एक प्रदेश तक चलने वाली होती है तथा इसका फल अन्य पात्र के लिए होता है।

विक्रमोर्वशीय में प्रकरी अर्थप्रकृति का स्वरूप पञ्चमाङ्क में प्राप्त होता है। राजा पुरुरवा और उर्वशी को पुत्रप्राप्ति होने पर उर्वशी राजा से कहती है कि इन्द्र के वचनानुसार मुझे स्वर्गलोग में वापिस जाना होगा। उर्वशी के इन वचनों से राजा अत्यन्त दु:खी होते हैं। तभी कुछ कालान्तर में देवर्षि नारद स्वर्ग से आकर राजा पुरुरवा से इन्द्र का सन्देश कहते हैं कि भविष्य में देवासुरसंग्राम होगा। अतः आपको अस्त्र नहीं छोड़ना चाहिए और यह उर्वशी जीवनभर आपकी धर्मपत्नी बनी रहेगी।[१६] नारद मुनि के ऐसा कहने पर राजा पुरुरवा को उर्वशी से विच्छेद होने का भय समाप्त हो जाता है।

अतः नारद के द्वारा इन्द्र का संदेश लाने वाला इतिवृत्त ही प्रकरी नामक अर्थप्रकृति है क्योंकि यहां पर देवर्षि नारद के रूप में पात्र का निवेश हुआ है तथा नारद मुनि का कथाप्रसङ्ग राजा पुरुरवा एवं उर्वशी के मिलन को स्थायी रूप प्रदान करता है अर्थात् नारदमुनि का कथाप्रसंङ्ग आधिकारिक कथावस्तु का सहायक बनता है।

कार्य-

अर्थप्रकृति का पाँचवा अंग कार्य है। आचार्य भरतमुनि ने 'कार्य' अर्थप्रकृति के विषय में कहा है[१७] कि आधिकारिक कथावस्तु में जिन उपयोगों अर्थात् पताका और प्रकरी इतिवृत्त को लक्ष्यप्राप्ति के लिए समाविष्ट किया जाता है तथा उनके समाविष्ट करने से जिस फल की प्राप्ति होती है उसे कार्य अर्थप्रकृति कहते हैं।

आचार्य विद्यानाथ ने प्रधान फलप्राप्ति के लिए निर्वाहित कथावयवों को कार्य कहा है।[१८] आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार जिस प्रधान साध्य के लिए जिन उपायों का आरम्भ किया गया है, जिनके समापन अर्थात् सामग्री इकट्ठी हुई हो उसे कार्य कहते हैं।[१९]

अतः कार्य नामक अर्थप्रकृति में प्रधान कथावस्तु को फल की प्राप्ति होती है। विक्रमोर्वशीय त्रोटक का मुख्य उद्देश्य राजा पुरुरवा एवं उर्वशी का स्थायी मिलन है। विक्रमोर्वशीय में पञ्चम अंक के अन्त में राजा पुरुरवा को उर्वशी का आजीवन सहधर्मिणी के रूप में निवास प्राप्त होता है।[२०] अतः यहां कार्य अर्थप्रकृति है।

केन्द्रीय विद्यालय, रायगञ्ज, पोस्ट- मिरवाल, जिला- उत्तर दिनाजपुर
(पश्चिम बंगाल)-७३३१३०

---

१५. द.रू, १.१३; ना. द. १.३२; सूत्र-३३, र.सु; ३.१५; प्र.रू. ३.७; सा.द. ६.६९; ना. च., पृ. १६
१६. विक्रमोर्वशीय, पृ. २७७ १७. ना. शा. १९.२६ १८. प्र.रू, ३.८. पूर्वार्द्ध
१९. सा.द. ६.६९ उत्तरार्द्ध २०. विक्रमोर्वशीय, पृ., २७७

वाल्मीकीय रामायण में श्री राम के राजनीतिक उपदेशों की वर्तमान में प्रासङ्गिकता

–श्री अजय शर्मा

यदि इतिहास की ओर दृष्टि करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि मनुष्य के मन में जब गम्भीर विचारों तथा विवेचनाओं का उदय हुआ तो सर्वप्रथम उसका ध्यान बाह्य जगत् की समस्याओं को सुलझाने की ओर गया। कुछ काल पश्चात् ही उसने जीवन की व्यावहारिक आवश्यकताओं को सुलझाने का प्रयास किया। उसने जीवन के ध्येय को जानना चाहा। यही प्रेरणा नीतिशास्त्र की जन्मदात्री है। इसी प्रेरणा के कारण यह परम्परागत भावनाओं, प्रचलनों और अभ्यासों को समझाना चाहता है। मनुष्य के लिए क्या उचित है, उसे प्रचलनों और अभ्यासों का कहाँ तक अनुकरण करना चाहिए, उसे अपने स्वतन्त्र इच्छित धर्म द्वारा किस ध्येय की प्राप्ति करनी चाहिए आदि सब बातें नीतिशास्त्र के अन्तर्गत आती हैं।

नीति शब्द का संक्षिप्त अर्थ है- **नीयन्ते उन्नीयन्तेऽर्था अत्र अनया सा नीतिः**[1] जहाँ अनेक विषयों पर विचार-विमर्श होता है उसे नीति कहते हैं।

इसी तरह राजनीति का अर्थ हुआ- राज्य या सरकार के प्रशासन सम्बन्धी विषयों पर विचार- विमर्श।

प्राचीन काल में किसी देश का संचालन राजा ही करते रहे हैं। किसी राज्य पर अधिकार करके राजाओं ने वहां रहने के कुछ नियम बनाये थे। इनमें कुछ नियम आज भी उसी तरह लागू हैं तथा कुछ नियमों में परिवर्तन होता आ रहा है। यदि ये नियम प्रजा के हित के लिए होंगे तो प्रजा इससे प्रसन्न रहेगी अन्यथा प्रजा भी इनका विरोध करेगी। इसलिए राजा को भलीभांति इस पर विचार करना चाहिए। इस संबंध में धर्मशास्त्र, स्मृतियों, शुक्रनीति, कौटिल्य अर्थशास्त्र में विस्तृत वर्णन है। वाल्मीकीय रामायण में भी राजनीतिपरक तत्त्वों की चर्चा हुई है।

जब भगवान् श्रीराम वनवास चले जाते हैं और इस बात का पता भरत को लगता है तो वह श्री राम जी से मिलने वन में जाता है। श्रीराम, सीता और लक्ष्मण भरत से मिलकर प्रसन्न होते हैं और राम उस समय भरत से कुशल-प्रश्न पूछकर राजनीति विषयक उपदेश देते हैं। एक आदर्श राजा वह ही है जो अपने माता-पिता, गुरुजनों आदि का आदर सत्कार करता है। श्रीराम भी भारत से पूछते हैं कि क्या तुम सदा धर्म में तत्पर रहने वाले, विद्वान्, ब्रह्मवेत्ता और इक्ष्वाकु कुल के आचार्य महातेजस्वी वसिष्ठ जी की यथावत् पूजा करते हो? (वा.रा.अ.१००-९)। क्या हमारी तीनों माताएं कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी प्रसन्न तो रहती हैं? (वही १००-१०)

१. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ.५०.

राजा को पुरोहितों, विद्वान् ब्राह्मणों, देवताओं, पितरों, भृत्यों, वैद्यों, पिता के समान आदरणीय वृद्धों आदि का सम्मान करते रहना चाहिए। जिससे राज्य में समृद्धि रहती है। राम भरत से कहते हैं कि जो उत्तम कुल में उत्पन्न, विनय-सम्पन्न, शास्त्रोक्त धर्मों पर निरन्तर दृष्टि रखने वाले हैं, उन पुरोहितों का तुमने पूर्णतः सत्कार किया है (वा.रा.अयो. १००.११)।

उसी को मन में रखकर राम भरत को कहते हैं कि तुमने जिसको मन्त्री बनाया है, क्या वह शास्त्रज्ञ, शूरवीर, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझने वाला है। क्योंकि अच्छी मन्त्रणा ही राजाओं की विजय का मूलकारण है और वह भी तभी सफल होती है, जब नीति-शास्त्र निपुण मन्त्री उसे सर्वथा गुप्त रखें तथा नीतिपूर्वक वचनों से अपने राजा को सर्वदा सचेष्ट रखें। आरम्भ किये हुए सभी कार्य पूर्ण हो जाने पर ही दूसरे राजाओं को उसके विषय में ज्ञान होने चाहिए। (वा. रा. अयो. १००.१६)।

राजा को असमय में ही निद्रा के वशीभूत नहीं होना चाहिए तथा रात के पिछले पहर में अर्थ सिद्धि के उपाय पर विचार करना चाहिए। श्रीराम अपनी बात को आगे बढाते हुए कहते हैं कि- क्या तुम सहस्रों मूर्खों की अपेक्षा एक पण्डित को ही अपने पास रखने की इच्छा रखते हो? क्योंकि विद्वान् पुरुष ही अर्थसंकट के समय उचित राय देकर उसको संकटरहित कर सकता है। (वा.रा.अयो. १००.२४)

नीति कहती है कि राजा को अपनी प्रजा का ध्यान रखना चाहिएं। उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएं देनी चाहिए। प्रजा को कठोर दण्ड नहीं देना चाहिए क्योंकि प्रजा कठोर दण्ड से अत्यन्त उद्विग्न होकर राजा तथा मन्त्रियों का तिरस्कार करने लगेगी। जो कि राजा के पतन की पहली सीढ़ी होती है। इतना ही नहीं राजा को चाहिए कि वह उसे ही सेनापति बनाए जो शूर-वीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान्, पवित्र कुलीन हो तथा राजकुल से अनुराग रखने वाला हो, रणकर्मदक्ष, युद्धकुशल तथा पराक्रमी हो। ऐसे सेनापति को राजा सम्मानित करता रहे। राजा को सैनिकों को देने के लिए नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता समय पर देना चाहिए। इसमें विलम्ब नहीं करना चाहिए। यदि समय बिताकर वेतन और भत्ता दिये जाते हैं तो सैनिक अपने स्वामी पर अप्रसन्न रहने लग जाते हैं। फलतः कभी-कभी इससे अनर्थ भी घटित हो सकता है।

राजा को चारचक्षुष कहा जाता है क्योंकि राजा बहुत कुछ अपने दूतों पर ही निर्भर करता है। अतः राजा को इस पद पर उस व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए, जो अपने ही देश का निवासी, विद्वान्, कुशल, प्रतिभाशाली और जैसी बात कही जाए, वैसी ही बात दूसरों के सामने कहने वाला तथा सदसद्विवेकी हो।

राजा की एक बड़ी शक्ति है उसका दुर्ग। अतः दुर्ग जितना मजबूत होगा उतना ही राजा अजेय होगा। मजबूत से तात्पर्य है कि दुर्ग में सैनिकों के योग्य सभी प्रकार की साम्रगी तो होनी ही चाहिए। साथ ही उसका दुर्ग शूरवीर सच्चरित्र देशभक्त सैनिकों से भरा रहना चाहिए। अतः सैनिक ईमानदार तथा परम आज्ञापालक तथा

कृतज्ञ होने चाहिएं। वे किसी प्रकार भी चोरी इत्यादि में दण्डित न हों।

१. कार्यपालक शक्तियाँ- आज राजा न होकर राष्ट्रपति देश का सर्वे सर्वा होता है। राष्ट्रपति देश का अध्यक्ष होता है। संघ सरकार के सभी प्रमुख अधिकारी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। कुछ प्रमुख अधिकारी जिन्हें राष्ट्रपति नियुक्त करता है उसमें प्रधानमंत्री, मंत्री परिषद् के सदस्य, भारत का मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश, संघ लोकसेवा आयोग का सभापति तथा अन्य सदस्य, भारत का नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक, राज्यपाल, वित्त आयोग के सदस्य इत्यादि सम्मिलित हैं।

२. विधायी शक्तियां- संसद का एक अभिन्न अंग होने के नाते राष्ट्रपति को महत्त्वपूर्ण विधायी शक्तियां प्राप्त हैं। वह संसद के दोनों सदनों को आमंत्रित व स्थगित कर सकता है।

३. वित्तीय शक्तियां- संसद में सभी वित्तीय विधेयक केबल राष्ट्रपति की सिफारिश पर प्रस्तुत किये जाते हैं। भारत की आकस्मिक निधि Contingency Fund of India का नियन्त्रण राष्ट्रपति के पास है।

४. न्यायिक शक्तियां- राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय व उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। राष्ट्रपति किसी भी व्यक्ति को, जिसे संघीय कानून के अंतर्गत दण्ड दिया गया है क्षमा प्रदान कर सकता है।

५. आपातकालीन शक्तियाँ- आपातकालीन परिस्थितियों से निपटने के लिए संविधान राष्ट्रपति को असाधारण शक्तियाँ प्रदान करता है।

६. सैन्य शक्तियां- देश की रक्षासेनाओं का सर्वोच्च कमांडर होने के नाते राष्ट्रपति, सेना, नौसेना तथा वायुसेना के अध्यक्षों की नियुक्ति करता है। उसे युद्ध की घोषणा करने तथा शांति स्थापित करने का भी अधिकार है।

७. राजनयिक शक्तियां- राष्ट्रपति अंताराष्ट्रीय मंचों पर देश का प्रतिनिधित्व करता है। वह दूसरे देशों में भारत के राजदूत भेजता है तथा उन देशों के राजदूतों को स्वीकार करता है।

अत: जिस तरह के अधिकार प्राचीन समय में राजा को प्राप्त थे उसी तरह के अधिकार वर्तमान समय में राष्ट्रपति को भी प्राप्त हैं। एक अच्छा राष्ट्रपति अच्छे राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। यह ठीक है कि प्रजातन्त्र में प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि ही कार्यपालिका के रूप में कार्य करते हैं, यदि कार्यपालिका द्वारा किसी प्रकार संविधान का उल्लंघन किया जाता है तब न्यायपालिका उसमें अपना मत प्रकट कर उसका औचित्य अनौचित्य देखकर तदनुरूप निर्णय देकर जनता को राहत प्रदान करती है पर जब बात इससे भी ऊपर आ जाय तब देश के प्रधानमन्त्री के आग्रह पर राष्ट्रपति सम्पूर्ण देश का शासन अपने हाथ में ले सकता है। इस प्रकार क्या हम यही नहीं मानते कि आज भी राष्ट्रपति के पास प्राचीन राजा की जैसी शक्ति विद्यमान है। अत: स्पष्ट है कि वर्तमान में राष्ट्रपति कैसा हो यह प्राचीन राजा के गुणदोष देखकर निर्णय किया जा सकता है।

-संस्कृत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

संस्थान-समाचार

दान –

श्रीमती रश्मि शर्मा प्राध्यापिका, एम.सी.एम., डी.ए.वी. कॉलेज, ६९, सैक्टर-१०, चण्डीगढ़।	१०,०००/-	**ट्रस्टी, कौशल्या वती चैरिटेबल ट्रस्ट,** ६८, आर.पी.एस. फ्लैट, शेख सराए, नई दिल्ली।	३०००/-
श्री एन.सी. गुप्ता ऐडवोकेट अमर कुटीर, सी-१९२, मधुवन, दिल्ली।	७०००/-	**श्री कुलदीप राय गुप्ता** ३६८/८, प्रह्लाद नगर, होशियारपुर।	१२००/-
डॉ. श्रवण कुमार रिहानी १६१७, सेक्टर-४४बी, चण्डीगढ़।	५०००/-	**डॉ. शिव कुमार वर्मा** डिप्टी लाईब्रेरीयन, वी.वी.बी.आई.एस.(पं.यू.), होशियारपुर।	१०००/-
		श्रीमती राज रानी गली-७, मकान ६४२९, हरगोविन्द नगर, लुधियाना।	५००/-

हवन-यज्ञ- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

अमृतवाणी-पाठ- अक्तूबर 2018 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में ही परमपूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का पाठ भी किया गया।

आचार्य विश्वबन्धु जयन्ती- विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के आद्य संचालक पद्मभूषण स्व. आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जी की जयन्ती ३-१०-१८ को हर्षोल्लास से मनाई गई। जिसमें संस्थान के कर्मिष्ठों, छात्रों के साथ-साथ पंजाब विश्वविद्यालय पटल के प्राध्यापक तथा छात्र-छात्राएं एवं नगर के गण-मान्य नागरिक भी उपस्थित थे। सर्वप्रथम प्रातः ९-३० बजे सत्संग मन्दिर में आचार्य शिवप्रसाद उपाध्याय द्वारा हवन-यज्ञ करवाया गया। इस हवन-यज्ञ के यजमान नगर के प्रसिद्ध समाजसेवी श्री कुलदीप राय गुप्ता थे। तत्पश्चात् पंजाब विश्वविद्यालय पटल के प्रो. (डॉ) रघवीर सिंह ने आचार्य जी के जीवन और उनके कार्यों पर प्रकाश डालते हुए बताया कि एम.ए. (संस्कृत) में उत्तीर्ण होने के आचार्य जी द्वारा स्थापित रिकार्ड को आज तक कोई नहीं तोड़ पाया। तत्कालीन सरकार द्वारा विदेश में जाकर अध्ययन करने के लिए दी जाने वाली छात्रवृत्ति

को भी आचार्य जी ने, संस्कृत का अध्ययन भारत में ही करना है- ऐसा कहते हुए ठुकरा दिया था। तदनन्तर श्री कुलदीप राय गुप्ता जी ने आचार्य जी की भीष्म प्रतिज्ञा को बतलाते हुए कहा कि आचार्य जी ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य का पालने करते हुए अपने जीवन को वैदिक साहित्य के संरक्षण के निमित्त समर्पित कर दिया। श्री गुप्ता जी ने आचार्य जी का उदाहरण देते हुए आज के युवाओं को प्रेरित करते हुए कहा कि वे अपने कार्यों को लगन और मेहनत से करें। अन्त में संस्थान संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल ने कहा कि यहां जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, यह सब आचार्य जी की कर्मठता का ही फल है और आशा है कि संस्थान आगे भी इसी प्रकार उन्नति करता रहेगा। सभा के अन्त में शान्तिपाठ के बाद सभी के लिए चायपान का प्रबन्ध किया गया।

विविध-समाचार

शोक समाचार- संस्थान की परमहितैषी श्रीमती सरोज जैसवाल के पति आदरणीय **श्री हरि कृष्ण जैसवाल** का दिनाँक 9-10-2018 को जीरकपुर (चण्डीगढ) में स्वर्गवास हो गया। आप मूलत: हरियाणा के रहने वाले थे, पर अपने व्यापार के कारण चण्डीगढ में काफी समय से परिवार के साथ रह रहे थे। आप एक अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता, मिलनसार, खुशदिल तथा सुखदु:ख में सभी के काम आने वाले व्यक्ति थे। संस्थान सदस्या श्रीमती अरुणा सूद, पुस्तकालयाध्यक्षा (पं. वि. प), साधु आश्रम के आप बहनोई थे। अत: आप जब कभी होशियारपुर आते तब संस्थान में सभी से मिलते थे। संस्थान के परमहितैषी एवं कर्मठ कार्यकर्ता स्वर्गीय रधुनाथ चन्द्र शास्त्री (खजांची) जी के साथ आपका हार्दिक स्नेह था। उनके घर में भी आना जाना था। मेरा आपके परिवार से लगभग 50 वर्षों से अच्छा परिचय रहा है। इसलिए मेरा जब कभी चण्डीगढ जाना होता तो में निश्चित ही उनको वहां मिलता था। इस प्रकार के परमहितैषी परोपकारी आप जैसे व्यक्ति के जाने से आपके परिवार एवम् इष्टमित्रों तथा सम्बन्धियों को जो दु:ख हुआ है उसके लिए परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह उन्हें इस दु:ख को सहन करने शक्ति प्रदान करे एवं दिवंगत की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

इन्द्रदत्त उनियाल (सम्पादक)

संस्थान के भूतपूर्व कर्मिष्ठ श्री राम लुभाया की पत्नी **श्रीमती प्रेम लता** का ११-१०-१८ बजवाड़ा (होशियारपुर) में देहान्त हो गया। आप एक साधारण व नेकदिल महिला थीं। संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की परिवार के साथ सहानुभूति है तथा प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति दे एवं परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति दे।

ॐ शांति! शांति!! शांति!!!

यस्मादभावी भावी वा मनुष्यः सुख-दुःखयोः।
आगमे यदि वापाये न तत्र ग्लपयेन्मनः।।

महा. आदिप. १७६. २६

संसार में सुख चाहने वाला मनुंष्य सुख और दुःख पाने में अपने को असमर्थ समझकर कभी भी मन में ग्लानि न लावे अर्थात् दुःखी न हो कि मुझे सुख प्राप्त नहीं हुआ अपितु दुःख ही मिला है। परन्तु सुख भी कभी जरूर मिलेगा यह सोचकर वह प्राणीमात्र के प्रति सेवाभाव दिखाता हुआ अपनी दिनचर्या करता रहे।

IN EVERLASTING MEMORY OF

LATE SH. PUSHAP KUMAR JAIN

(Expired on 19th Nov. 1980)

ON HIS 38TH DEATH ANNIVERSARY

DEEPLY REMEMBERED BY :

RAVI KUMAR JAIN (Son)
NEENA JAIN (Daughter in Law)
VARUN JAIN (Grand Son)
SHEENA JAIN (Grand Daughter in Law)
AMIT JAIN (Grand Son in Law)
PRERNA JAIN (Grand Daughter)
Great Grand Children
ANANYA, VIBHAV, NAVYA,RIDIT

PHARMA CRAFTS (INDIA)
Pushapkamal Building, P. W. D. Rest House Road, Gagret – 177201, Distt. Una (H. P.)
SURGINEEDS
N. A. C. Buildings, Gagret–177201, Distt. Una (H. P.)
SHREYANS INDIA
"Pragati Bhawan", Near S. D. City Public School,
Chintpurni Road, Hoshiarpur - 146001 (Pb.)
Cell No.: 98160-41475, 98886-91475

शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम्।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः।।

वा. रा. किष्कि. ३०/७३

जो व्यक्ति अपनी कही हुई अच्छी, बुरी, कठोर, सुखदायी, अथवा दुःखदायी बात का जीवन में पालन करता है, वह वीर तथा श्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता है अर्थात् वीर पुरुष अपनी कही हुई बात पर हिमालय की तरह स्थिर रहता है।

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित

श्री डी. पी. बासुदेव

६, कूल रोड़,

जालन्धर शहर

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१०-२०१८ को प्रकाशित।